अथ द्वादशं काण्डम्

यहाँ प्रथम सूक्त का ऋषि 'अथर्वा' है—यह स्थिरवृत्ति का है (न थर्वति) तथा आत्मनिरीक्षण की प्रवृत्तिवाला है (अथ अर्वाङ्)। यह स्वार्थ के लिए न जीकर परार्थ में प्रवृत्त होता है, पृथिवी को अपना घर बनाता है। इसकी धारणा है कि—

अथ षड्विंशः प्रपाठकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पृथिवीं धारयन्ति

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥ १॥

१. '**बृहत् सत्यम्**=वृद्धि का कारणभूत सत्य, **उग्रं ऋतम्**=प्रबल तेजस्विता का साधक—ऋत, अर्थात् भौतिक क्रियाओं का ठीक समय व ठीक स्थान पर करना, **दीक्षा**=व्रतग्रहण, **तपः**=तप, **ब्रह्म**=ज्ञान और **यज्ञः**=यज्ञ'—ये बातें **पृथिवीं धारयन्ति**=पृथिवी का धारण करती हैं। जब एक राष्ट्र में लोग, 'सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञों' को अपनाते हैं तब वह राष्ट्र उत्तम बनता है। २. **सा**=वह **नः**=हमारे **भूतस्य भव्यस्य पत्नी**=भूत और भविष्य का रक्षण करनेवाली—हमारे भूत और भविष्य को उज्ज्वल बनानेवाली **पृथिवी**=पृथिवी **नः**=हमारे लिए **उरुं लोकम्**=(उरु exellent) उत्तम प्रकाश को व विशाल स्थान को **कृणोतु**=करे। इस पृथिवी पर सत्य आदि का पालन करते हुए हम पृथिवी का धारण करते हैं। धारित हुई-हुई यह पृथिवी हमारे भूत व भविष्यत् को उज्ज्वल बनाती है और हमारे लिए उत्तम प्रकाश को प्राप्त कराती है।

भावार्थ—हम 'सत्य, ऋत, दीक्षा, ब्रह्म व यज्ञ'-मय जीवनवाले होते हुए इस पृथिवी का धारण करें, पृथिवी हमारे भूत व भविष्य को अर्थात् सम्पूर्ण जीवन को उज्ज्वल बनाएगी तथा हमारे लिए प्रकाशमय जीवन को प्राप्त कराएगी—इस विस्तृत पृथिवी पर हम सब परस्पर प्रेम से रह पाएँगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

पृथिवी माता की विशाल गोद

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥ २॥

१. पृथिवी 'पृथिवी' है—सचमुच पर्याप्त विस्तारवाली है। यह अपनी गोद में मानवों के लिए पर्याप्त स्थान रखती है। उनके परस्पर सम्बाध=टकराने की यहाँ आवश्कता ही नहीं। सामान्यतः एक देश व दूसरे देश के मध्य में पर्वत व नदी, सिन्धु आदि की इसप्रकार की एक स्वाभाविक सीमा-सी बनी हुई है कि एक-दूसरे से लड़ने की सुविधा व सम्भावना ही कम हो जाती है। इसप्रकार **मानवानाम्**=मनुष्यों के **असम्बाधम् मध्यतः**=परस्पर न टकराने की व्यवस्था करती हुई, **यस्याः**=जिस पृथिवी के **उद्वतः**=(Height, elevatives, declivity, precipice) उच्चस्थल, **प्रवतः**=(Declivity, precipice) ढलान व **समम्**=समस्थल **बहु**=बहुत हैं। **या**=जो

पृथिवी **नानावीर्याः**=विविध शक्तियोंवाली **ओषधीः**=ओषधियों को **बिभर्ति**=धारण करती है, वह पृथिवी **नः प्रथताम्**=हमारी शक्तियों का विस्तार करे और **नः राध्यताम्**=हमारे लिए कार्यों में सिद्धि को प्राप्त करानेवाली हो।

भावार्थ—पृथिवी विशाल है—समझदार व्यक्तियों को यहाँ परस्पर टकराने (सम्बाध) की आवश्यकता नहीं। पृथिवी के उच्चस्थल, ढलान व समस्थल बहुत हैं। वे भिन्न-भिन्न स्वभाववाले व्यक्तियों के रहने के लिए पर्याप्त हैं। यह पृथिवी विविध ओषधियों को जन्म देती हुई हमें शक्ति-सम्पन्न बनाती है और सफल करती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥ ३॥

१. **यस्याम्**=जिस पृथिवी में **समुद्रः**=समुद्र हैं, **उत**=और **सिन्धुः**=प्रवाहमयी नदियाँ हैं, **आपः**=झील आदि के रूप में जल हैं, **यस्याम्**=जिसमें **कृष्टयः**=श्रमशील कृषकजन **अन्नं संबभूवुः**=अन्न उत्पन्न करते हैं। २. **यस्याम्**=जिस पृथिवी में **इदम्**=यह **प्राणत् एजत्**=प्राणधारण करनेवाले गतिशील प्राणी **जिन्वति**=अन्न-जल से तृप्ति का अनुभव करते हैं, **सा**=वह **भूमिः**=भूमि **नः**=हमें **पूर्वपेये दधातु**=पालनात्मक व पूरणात्मक (पॄ पालनपूरणयोः) दुग्ध-रस आदि पेय पदार्थों में (पयः पशूनां रसमोषधीनाम्) **दधातु**=धारण करे। हमें दुग्ध-रस आदि प्राप्त कराके पुष्टि देनेवाली हो।

भावार्थ—प्रभु ने इस पृथिवी पर समुद्रों, नदियों व झील आदि द्वारा पानी की सुव्यवस्था की है। यहाँ श्रमशील मनुष्य अन्न के उत्पादन का ध्यान करते हैं और अन्न-रस द्वारा तृप्ति का अनुभव करते हुए अपना धारण करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

गोदुग्ध+अन्न

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥ ४॥

१. **यस्याः पृथिव्याः**=जिस पृथिवी की **चतस्रः प्रदिशः**=चारों दिशाएँ प्रकर्षवाली हैं—जिससे सब ओर विविध सौन्दर्य है। **यस्याम्**=जिसमें **कृष्टयः**=श्रमशील मनुष्य **अन्नं संबभूवुः**=अन्न को सम्यक् उत्पन्न करते हैं। २. **या**=जो पृथिवी **बहुधा**=बहुत प्रकार से **प्राणत् एजत्**=प्राणधारण करनेवाले गतिशील प्राणियों का **बिभर्ति**=भरण व पोषण करती है। **सा भूमिः**=वह भूमि **नः**=हमें **गोषु**=गौओं में **अन्ने अपि**=तथा अन्न में भी **दधातु**=स्थापित करे। गोदुग्ध हमारे लिए सदा सुलभ बना रहे तथा अन्न की हमें कमी न हो।

भावार्थ—इस पृथिवी की सभी दिशाएँ उत्तम हैं। यहाँ श्रमशील कृषकजन अन्न का उत्पादन करते हैं। यह सभी प्राणियों का धारण करती है। हमारे यहाँ गोदुग्ध व अन्न सदा सुलभ हों।

ऋषिः—**अथर्वाः**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

भग+वर्चस्

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥ ५॥

१. **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **पूर्वजनाः**=श्रेष्ठ—प्रथमस्थान में स्थित, सात्त्विकवृत्ति के पुरुष **विचक्रिरे**=विशिष्ट कर्मों को करते हैं। **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **असुरान् अभ्यवर्तयन्**=असुरों को आक्रान्त करते हैं (अभिवृत् to attack, assail) अर्थात् जहाँ असुर प्रबल नहीं हो पाते। २. वह **गवाम्**=गौओं की **अश्वानाम्**=घोड़ों की **च**=और **वयसः**=पक्षियों की **विष्ठाम्**=(वि-स्था) विविध रूप से रहने का स्थान बनी हुई **पृथिवी**=भूमि **नः**=हममें **भगं वर्चः**=ऐश्वर्य और तेज **दधातु**=धारण कराये। यह पृथिवी हमारे लिए ऐश्वर्य व तेज को देनेवाली हो।

भावार्थ—इस पृथिवी पर पालन व पूरण करनेवाले श्रेष्ठजन विविध कर्त्तव्य-कर्मों को करते हैं। यहाँ देव असुरों को प्रबल नहीं होने देते। यह पृथिवी गौओं, घोड़ों व पक्षियों का विशिष्ट स्थिति-स्थान है। यह पृथिवी हमारे लिए ऐश्वर्य व तेज का धारण करे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

'वसुधानी हिरण्यवक्षाः' पृथिवी

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥ ६॥

१. यह **भूमिः**=पृथिवी **विश्वंभरा**=सबका भरण करनेवाली है, **वसुधानी**=निवास के लिए आवश्यक सब द्रविणों का धारण करनेवाली है, **प्रतिष्ठा**=सबका आधार है, **हिरण्यवक्षाः**=सारे जगत् को बसानेवाली है। २. **वैश्वानरं अग्निं बिभ्रती**=उत्तम अन्न व दुग्ध की समिधाओं व आहुतियों द्वारा हमारी जाठराग्नि का भरण करती हुई यह **इन्द्रऋषभा**=सूर्यरूप ऋषभवाली पृथिवी **नः**=हमें **द्रविणे दधातु**=धनों में धारण करे। पृथिवी 'गौ' है, सूर्य उसका 'ऋषभ' है। जैसे ऋषभ गौ में शक्ति का सेचन करता है, इसीप्रकार सूर्य इस पृथिवी में वृष्टिजल का सेचन करता है। तब यह पृथिवी अन्नादि द्रविणों को जन्म देनेवाली होती है।

भावार्थ—यह पृथिवी सबका भरण करनेवाली है, सब वसुओं का धारण करनेवाली, सबका आधार, सुवर्ण की खानोंवाली यह पृथिवी सब जगत् को बसानेवाली है। यह अन्नादि द्वारा हमारी जाठराग्नि को ईंधन प्राप्त कराती हुई, हमें सब द्रविणों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

मधु

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥ ७॥

१. **यां पृथिवीं भूमिम्**=जिस अतिशय विस्तारवाली भूमि का **अस्वप्नाः**=निद्रा व आलस्य से रहित **देवाः**=देव लोग **विश्वदानीम्**=सदा **अप्रमादम् रक्षन्ति**=प्रमादरहित होकर रक्षित करते हैं, **सा**=वह पृथिवी **नः**=हमारे लिए **प्रियं मधु**=प्रीणित करनेवाले मधुवत् मधुर अन्नों को **दुहाम्**=प्रपूरित करे **अथो**=और इनके द्वारा **वर्चसा उक्षतु**=शक्ति से सिक्त करे।

भावार्थ—सब देव प्रमादशून्य होकर इस पृथिवी की रक्षा करते हैं। यह हमारे लिए मधु का दोहन करती हुई हमें शक्ति से सिक्त करे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाविराडष्टिः**॥

'सत्येनावृतम् अमृतम्' हृदयम्

यार्णवेधि सलिलमग्र असीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्यो ∫ मन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधतूत्तमे॥ ८॥

१. **या**=जो **अग्रे**=पहले **अर्णवे अधि**=महान् समुद्र में **सलिलम् आसीत्**=जलरूप ही थी, अर्थात् जल में ही लीन हुई-हुई थी (अद्भ्यः पृथिवी) जलों से ही तो इसकी उत्पत्ति होती है, **याम्**=जिस पृथिवी को **मनीषिणः**=ज्ञानी लोग **मायाभिः**=प्रज्ञानों के साथ **अनु अचरन्**=अनुकूलता से सेवित करते हैं। **सा भूमिः**=वह भूमि **नः**=हमारे लिए **उत्तमे राष्ट्रे**=(मनीषियों से सेवित) उत्तम राष्ट्र में **त्विषिं बलं दधतु**=ज्ञानदीप्ति व बल को धारण करे। २. वह पृथिवी हमारे लिए 'त्विषि और बल' को धारण करे, **यस्याः पृथिव्याः**=जिस पृथिवी का—पृथिवी पर विचरण करनेवाले मनीषियों का—**हृदयम्**=हृदय **परमे व्योमन्**=परम व्योम, अर्थात् प्रभु में है (ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्०) और अतएव **सत्येन आवृतम्**=सत्य से आवृत है—प्रभुस्मरण से हृदय में असत्य के प्रवेश का सम्भव नहीं रहता, अतएव **अमृतम्**=अमृत है—विषय-वासनाओं के पीछे मरनेवाला नहीं है।

भावार्थ—यह पृथिवी पहले जलरूप थी। इस पृथिवी पर मनीषी लोग ज्ञानपूर्वक विचरण करते हैं। पृथिवी पर विचरनेवाले इन मनीषियों का हृदय प्रभु में स्थित होता है—सत्य से आवृत होता है और विषय-वासनाओं के पीछे मरनेवाला नहीं होता।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**परानुष्टुप्**॥

समानीः आपः

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥ ९॥

१. **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **आपः**=जल **परिचराः**=चारों ओर गतिवाले हैं—सर्वत्र उपलभ्य हैं तथा **समानीः**=(सम् अन्) सम्यक् प्राणित करनेवाले हैं (अपोमयाः प्राणाः)। ये जल **अहोरात्रे**=दिन-रात **अप्रमादं क्षरन्ति**=प्रमादशून्य होकर संचलित हो रहे हैं। २. **सा**=वह **भूरिधारा**=अनन्त अथवा पालक व पोषक धाराओंवाली **भूमिः**=पृथिवी **नः**=हमारे लिए **पयः**=दुग्ध का—आप्यायन करनेवाली वस्तुओं का **दुहाम्**=प्रपूरण करे। **अथो**=और दुग्ध के प्रपूरण के द्वारा **वर्चसा उक्षतु**=वर्चस् से सिक्त करे—हमें यह शक्तिशाली बनाए।

भावार्थ—इस पृथिवी पर प्राणशक्तिप्रद जल चारों दिशाओं में बह रहे हैं। यह पृथिवी हमारे लिए दुग्ध के प्रपूरण के द्वारा शक्ति का सेचन करनेवाली बनती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

शचीपति इन्द्र

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे। इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः॥ १०॥

१. **याम्**=जिस पृथिवी को **अश्विनौ**=सूर्य व चन्द्र **अमिमाताम्**=मापने में लगे हैं—पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए सूर्य व चन्द्र मानो पृथिवी को माप ही रहे हैं। **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **विष्णुः**=(आदित्यानामहं विष्णुः) सर्वाधिक देदीप्यमान विष्णु नामक आदित्य **विचक्रमे**=विशिष्ट

गतिवाला व पुरुषार्थवाला होता है। अथवा **विष्णुः**=सर्वव्यापक प्रभु **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **विचक्रमे**=विविध सृष्टि (पदार्थों) को उत्पन्न करता है। २. **याम्**=जिस भूमि को **इन्द्रः**=जितेन्द्रिय, **शचीपतिः**=शक्ति व प्रज्ञान का स्वामी पुरुष **आत्मने**=अपने लिए **अनमित्राम्**=शत्रुरहित **चक्रे**=करता है। जितेन्द्रिय बनकर, शक्ति व प्रज्ञान के साथ विचरने पर, यहाँ कोई भी पदार्थ हमारे लिए हानिकर नहीं होता। **सा नः भूमिः**=वह हमारी भूमिमाता **मे**=मेरे लिए **पयः विसृजताम्**=दूध दे, जैसेकि **माता पुत्राय**=माता पुत्र के लिए दुग्ध देती है।

भावार्थ—सूर्य और चन्द्र से इस पृथिवी का मानो मापन हो रहा है। इन सूर्य-चन्द्र के द्वारा सर्वव्यापक प्रभु पृथिवी पर विविध वनस्पतियों को जन्म दे रहे हैं। यह पृथिवी शक्ति व प्रज्ञान के स्वामी जितेन्द्रिय पुरुष की मित्र है। यह भूमि हम पुत्रों के लिए आप्यायन के साधनभूत दुग्ध आदि पदार्थों को दे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाविराडष्टिः**॥

अजीतः अहतः अक्षतः

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥ ११॥

१. हे **पृथिवि**=भूमिमातः! **ते गिरयः**=तेरे ये छोटे-छोटे पहाड़, **हिमवन्तः पर्वताः**=हिमाच्छादित पर्वत और **ते अरण्यम्**=तेरा यह जंगल **स्योनम् अस्तु**=हमारे लिए सुखकर हो। तेरे गिरि हमारे लिए विविध ओषधियों को प्राप्त कराएँ, हिमाच्छादित पर्वत नदियों के उद्गम स्थान हों तथा अरण्य हमें सब काष्ठों को प्राप्त करानेवाले व हमारी गौवों के लिए चारागाहों के रूप में हों। २. मैं **पृथिवीम्**=अतिशयेन विस्तारवाली, **भूमिम्**=(भवन्ति भूतानि यस्यां सा) प्राणियों की निवासस्थानभूत **पृथिवीम्**=पृथिवी पर **अजीतः**=अपराजित हुआ-हुआ **अक्षतः**=चोट न खाया हुआ **अहतः**=अहिंसित रूप में **अध्यष्ठाम्**=अधिष्ठित होऊँ। उस पृथिवी पर मैं अधिष्ठित होऊँ, जोकि **बभ्रुम्**=हम सबका भरण करनेवाली है, **कृष्णाम्**=जो कृषकों द्वारा कृष्ट हुई है, **रोहिणीम्**=सब वनस्पतियों को उत्पन्न करनेवाली है, **विश्वरूपाम्**=नाना प्रकार के प्राणियों से युक्त है, **ध्रुवाम्**=अपनी मर्यादा में स्थित है तथा **इन्द्रगुप्ताम्**=प्रभु द्वारा अथवा प्रभु के प्रतिनिधिरूप राजा द्वारा सुरक्षित हुई है।

भावार्थ—पृथिवी के 'गिरि, हिमाच्छादित पर्वत व अरण्य' हमारे लिए सुखकर हों। यह हमारा भरण करती है, कृषि द्वारा अन्नों को देती है, सब वनस्पतियों की उद्गमस्थली है। मैं अपराजित व अक्षत हुआ-हुआ इसपर स्थित होऊँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

माता भूमिः—पुत्रोऽहं पृथिव्याः

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्व ऽसंबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥ १२॥

१. हे **पृथिवि**=पृथिवि! **यत्**=जो **ते**=तेरे **ऊर्जः**=(ऊर्क् अन्नं च रसं च—नि० ९.४१) अन्न और रस **ते**=तेरे **तन्वः**=शरीर से **संबभूवुः**=उत्पन्न होते हैं, **तासु**=उन अन्न-रस आदि में **नः**=हमें **अभिधेहि**=धारण कर और उन अन्न-रस आदि से **नः**=हमें **पवस्व**=पवित्र जीवनवाला बना।

पृथिवी का मध्य व केन्द्र शतशः स्वर्ण आदि धातुओं का उद्गमस्थल है। वह हमें इन हिरण्य आदि के साथ प्राप्त हो। २. **भूमिः माता**=यह भूमि माता है, **अहं पृथिव्याः पुत्रः**=मैं पृथिवी का पुत्र हूँ। **पर्जन्यः पिता**=मेघ ही पिता है। **सः**=वह **उ**=निश्चय से **नः पिपर्तु**=हमें पालित व पूरित करे। भूमि माता है, पर्जन्य पिता है। पर्जन्य ही वृष्टिसेचन द्वारा भूमि में अन्नादि का उत्पादन करता है। मैं इनसे पालित इनका पुत्र हूँ।

भावार्थ—पृथिवी के मध्य व केन्द्र में शतशः स्वर्णादि धातुएँ स्थापित हैं। पृथिवी के शरीर से ही सब अन्न-रस आदि की उत्पत्ति होती है। यह भूमि माता इनके द्वारा हमारा पालन करती है। भूमि माता है, पर्जन्य पिता है। ये मेरा पालन करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

यज्ञवेदि

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद्वर्धमाना॥ १३॥

१. **यस्यां भूम्याम्**=जिस भूमि पर **वेदिं परिगृह्णन्ति**=वेदि का ग्रहण करते हैं और **यस्याम्**=जिस भूमि पर वेदि को बनाकर, **विश्वकर्माणः**=सबके लिए (विश्व) कर्मों को करनेवाले विश्वकर्मा लोग **यज्ञं तन्वते**=यज्ञ का विस्तार करते हैं। २. **यस्यां पृथिव्याम्**=जिस पृथिवी पर **स्वरवः**=(A part of a sacrificial post) यज्ञ का स्तम्भ **ऊर्ध्वाः**=खूब ऊँचे-ऊँचे और **शुक्राः**=उज्ज्वल (चमकते हुए) **आहुत्याः पुरस्तात्**=आहुति से पूर्व **मीयन्ते**=मापकर बनाये जाते हैं, **सा**=वह **वर्धमाना**=इन यज्ञों से वृद्धि को प्राप्त होती हुई **भूमिः**=भूमि **नः वर्धयत्**=हमें बढ़ाये।

भावार्थ—इस पृथिवी पर हम यज्ञवेदियों का निर्माण करके यज्ञों को करनेवाले बनें। यज्ञों से वृष्टि द्वारा (अग्निहोत्रं स्वयं वर्षम्) पृथिवी का वर्धन होता है। यह हमारा वर्धन करती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**महाबृहती**॥

अ-द्वेष

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्यो ऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥ १४॥

१. हे **पृथिवि**=भूमिमातः! **यः नः द्वेषत्**=जो भी हमसे द्वेष करता है, **यः पृतन्यात्**=जो सेना के द्वारा हमपर आक्रमण करता है, **यः**=जो **मनसा अभिदासात्**=मन से हमारा उपक्षय करता है—मन से हमारा अशुभ चाहता है, **यः वधेन**=जो हनन-साधन आयुधों से हमारा क्षय करता है, हे **पूर्वकृत्वरि**=शत्रुकृन्तन में सबसे प्रथम स्थान में स्थित **भूमे**=भूमिमातः! **नः तम्**=हमारे उस द्वेष्टा को **रन्धय**=वशीभूत कर अथवा विनष्ट कर (rend)।

भावार्थ—हे भूमिमातः! कुछ ऐसी व्यवस्था कर कि कोई हमारा 'द्वेष्टा, आक्रान्ता, अशुभेच्छु व हन्ता' न हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

अमृत ज्योति

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥ १५॥

१. हे **पृथिवि**=पृथिवि! **त्वत् जाताः**=तुझसे प्रादुर्भूत हुए-हुए—इस पार्थिव शरीर को प्राप्त हुए-हुए **मर्त्याः**=मनुष्य **त्वयि चरन्ति**=तुझपर ही विचरते हैं। **त्वम्**=तू **द्विपदः**=दो पाँववाले इन मनुष्यों को **बिभर्षि**=भृत व पोषित करती है, **त्वं चतुष्पदः**=तू ही चौपायों को धारण करती है। २. **इमे**=ये **पञ्च मानवाः**='ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद' इन पाँच भागों में विभक्त मनुष्य **तव**=तेरे ही पुत्र हैं। **येभ्यः मर्त्येभ्यः**=जिन तेरे पुत्ररूप मर्त्यों के लिए **उद्यन् सूर्यः**=उदय होता हुआ सूर्य **रश्मिभिः**=अपनी किरणों के द्वारा **अमृतं ज्योतिः**=अमृत ज्योति को—कृमिनाश द्वारा नीरोगता प्राप्त करानेवाले प्रकाश को **आतनोति**=विस्तृत करता है।

भावार्थ—पृथिवी से उत्पन्न ये प्राणी इस पृथिवी पर ही विचरते हैं—यह पृथिवी मनुष्यों व पशु-पक्षियों का धारण करती है। 'ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पाँच भागों में विभक्त तेरे रूप इन मर्त्यों के लिए उदय होता हुआ सूर्य अमृत ज्योति देता है।'

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्**॥

समग्राः वाचः मधु

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्॥ १६॥

१. हे **पृथिवि**=भूमिमातः! **ताः**=वे **नः**=हमारी **प्रजाः**=प्रजाएँ—सन्तान **समग्राः वाचः**=सम्पूर्ण ज्ञानवाणियों का **संदुहताम्**=सम्यक् दोहन करें, अर्थात् वे खूब ज्ञान की रुचिवाली बनें और हे पृथिवि! तू **मह्यम्**=मेरे लिए **मधु धेहि**=माधुर्य को धारण कर। मैं सदा मधुरवाणी ही बोलनेवाला बनूँ।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमारी सन्तानें ज्ञान प्रधान हों और हमारे जीवन में मधुरता हो। हम कभी कटु शब्द न बोलें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'विश्व-सू' पृथिवी

विश्वस्वं ∫ मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥ १७॥

१. **विश्वस्वम्**=(सूः) सम्पूर्ण धनों को उत्पन्न करनेवाली, **ओषधीनां मातरम्**=ओषधियों की मातृभूत **ध्रुवाम्**=मर्यादा में स्थित, **पृथिवीम्**=अतिशयेन विस्तारवाली **भूमिम्**=इस भूमि पर **विश्वहा**=सदा **अनुचरेम्**=अनुकूलता से विचरण करें। यह पृथिवी इतनी विशाल है कि यहाँ परस्पर संघर्ष की आवश्यकता ही नहीं। २. इस पृथिवी पर हम विचरण करें जोकि **धर्मणा धृताम्**=धर्म से धारण की गई है, अर्थात् जब तक यहाँ रहनेवाले मनुष्य धर्म का पालन करते हैं तब तक यह पृथिवी भी सबका धारण करती हुई सुन्दर बनती है। **शिवाम्**=यह कल्याणकारिणी है और **स्योनाम्**=सुख-दा है। अध्यात्म दृष्टिकोण से व भौतिक दृष्टिकोण से—दोनों ही दृष्टिकोणों से यह हमारा शुभ करती है।

भावार्थ—यह पृथिवी सब धनों को उत्पन्न करती है, ओषधियों को जन्म देती है। यह हमारे लिए मातृवत् कल्याणकारिणी है। धर्म के द्वारा इसका धारण होता है (धर्मो धारयते प्रजाः)।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदात्रिष्टुबनुष्टुब्गर्भातिशक्वरी**॥

महत् सधस्थम्

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे। महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥ १८॥

१. हे **भूमे**=भूमिमातः! तू **महत् सधस्थम्**=मिलकर रहने का महान् स्थान है, **महती**

बभूविथ=तू सचमुच विशाल है। **महान् ते वेगः**=तेरा वेग महान् है—तू तीव्र गतिवाली है। **एजथुः वेपथुः**=तेरा हिलना-डुलना भी महान् है—कम्प (भूकम्प) अति प्रबल है। **महान् इन्द्रः**=पूजनीय परमैश्वर्यशाली प्रभु **अप्रमादं त्वा रक्षति**=प्रमादरहित होकर तेरा रक्षण कर रहे हैं। २. हे भूमे! **सा**=वह तू **नः प्ररोचयः**=हमें दीप्त जीवनवाला बना। **हिरण्यस्य इव**=स्वर्ण की तरह **संदृशि**=दिखनेवाली—चमकती हुई दीप्त भूमे! तू ऐसी कृपा कर कि **कश्चन**=कोई भी **नः**=हमसे **मा द्विक्षत**=द्वेष न करे।

भावार्थ—यह विशाल पृथिवी हम सबके लिए मिलकर रहने की भूमि है। इसका वेग व कम्प महान् है—प्रभु इसके रक्षक हैं। यह हमें द्वेषशून्य व दीप्त जीवनवाला बनाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**उरोबृहती**॥

पृथिवी का मुख्य देव 'अग्नि'

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः॥ १९॥

१. **अग्निः भूम्याम्**=अग्नि इस भूमि पर मुख्य देव के रूप से है। **ओषधीषु**=सब ओषधियों में भी अग्नि है। **आपः अग्निं बिभ्रति**=जल अग्नि को धारण करते हैं। यह **अग्निः अश्मसु**=अग्नि पाषाणों में भी है। २. **अग्निः**=वैश्वानररूप से यह अग्नि **पुरुषेषु अन्तः**=पुरुषों के देह में निवास करता है। **गोषु अश्वेषु**=गौवों व घोड़ों में भी **अग्नयः**=पाचनशक्ति के रूप में अग्नियाँ हैं।

भावार्थ—पृथिवी का मुख्य अग्नि 'ओषधियों, जलों, पाषाणों, पुरुषों, गौवों व घोड़ों' में सर्वत्र निवास करता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**विराडुरोबृहती**॥

त्रिलोकी में 'अग्नि' का निवास

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्वन्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्॥ २०॥

१. **दिवः**=द्युलोक से यह **अग्निः आतपति**=सूर्यरूप अग्नि समन्तात् दीप्त हो रहा है। **देवस्य अग्नेः**=प्रकाशमय विद्युद्रूप अग्नि का ही यह **उरु अन्तरिक्षम्**=विशाल अन्तरिक्ष है। **मर्तासः**=इस पृथिवी पर स्थित मनुष्य उस **अग्निं इन्धते**=अग्नि को दीप्त करते हैं, जोकि **हव्यवाहम्**=हव्य पदार्थों का वहन करता है और **घृतप्रियम्**=घृत के द्वारा प्रीणित होनेवाला है, अर्थात् मनुष्य यहाँ यज्ञाग्नि को दीप्त करते हैं।

भावार्थ—यह अग्नि द्युलोक में सूर्यरूप से है, अन्तरिक्ष में विद्युद्रूप से तथा इस पृथिवी पर यज्ञाग्नि के रूप में मनुष्यों से दीप्त किया जाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**साम्नीत्रिष्टुप्**॥

असित-ज्ञूः

अग्निर्वासाः पृथिव्य ऽ सितज्ञूस्त्विषीमन्तं संशितं मा कृणोतु॥ २१॥

१. **पृथिवी**=यह भूमि **अग्निवासाः**=अग्निरूप वस्त्र को धारण किये हुए है तथा इसमें अग्नि का वास है—पृथिवी के अन्दर भी अग्नि तत्त्व है और बाहर भी। **असित-ज्ञूः**=यह 'अग्निवासाः पृथिवी' उस अबद्ध, (अ सक्त) प्रभु का ज्ञान दे रही है। इसपर उत्पन्न एक-एक पत्र-पुष्प उस प्रभु की महिमा का प्रतिपादन कर रहा है। २. यह पृथिवी **मा**=मुझे **त्विषीमन्तम्**=ज्ञान की दीप्ति-वाला व **संशितम्**=तेजस्वी **कृणोतु**=करे। इसका एक-एक पदार्थ मेरी उत्सुकता को बढ़ाता हुआ

मेरी ज्ञानवृद्धि का कारण बने और इसके पदार्थ मुझसे ठीक उपयुक्त हुए-हुए मुझे तेजस्वी बनाएँ।

भावार्थ—यह अग्निवासा पृथिवी मुझे भी ज्ञानाग्नि व तेजस्विता की अग्निवाला बनाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाविराडतिजगती**॥

प्राणशक्ति-सम्पन्न दीर्घजीवन

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः।
सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी कृणोतु॥ २२॥

१. **भूम्याम्**=इस पृथिवी पर **देवेभ्यः**=वायु आदि देवो के लिए—इनकी शुद्धि के लिए—**अरंकृतम्**=सम्यक् सुसंस्कृत की हुई **हव्यम्**=हव्य सामग्री को तथा **यज्ञम्**=अग्नि के साथ घृतादि के सम्पर्क रूप (यज्ञ संगतिकरणे) यज्ञ को **ददति**=देते हैं। इस यज्ञ के द्वारा ही वस्तुतः **भूम्याम्**=इस पृथिवी पर **मर्त्याः मनुष्याः**=ये मरणधर्मा **स्वधया**=(पितृभ्यः स्वधा) वृद्ध माता-पिताओं के लिए दिये जानेवाले अन्न से तथा **अन्नेन**=स्वयं भुज्यमान अन्न से **जीवन्ति**=जीते हैं। यज्ञ ही मनुष्यों को आवश्यक अन्न प्राप्त कराते हैं। २. **साः भूमिः**=वह भूमि **नः**=हमारे लिए **प्राणम् आयुः**=प्राणशक्ति व दीर्घजीवन को **दधातु**=धारण करे। यह **पृथिवी**=पृथिवी **मा**=मुझे **जरदष्टिम्**=जरावस्थापर्यन्त पूर्ण दीर्घजीवन को व्याप्त करनेवाला **कृणोतु**=करे, अर्थात् यज्ञवेदि बनी हुई यह पृथिवी हमें प्राणशक्ति व प्रशस्त दीर्घजीवन प्राप्त कराए।

भावार्थ—हम इस पृथिवी पर यज्ञशील बनें। ये यज्ञ हमें स्वधा व अन्न प्राप्त कराएँ। इस प्रकार हम प्राणशक्ति-सम्पन्न दीर्घ जीवनवाले बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाविराडतिजगती**॥

गन्धवती पृथिवी

यस्ते गन्धः पृथिवी संबभूव यं बिभ्रत्योषधयो यमापः।
यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन॥ २३॥

१. हे **पृथिवि**=भूमे! **यः ते गन्धः संबभूव**=जो तेरा गन्ध सर्वत्र विशेष गुणरूप से विद्यमान है। **यम्**=जिस गन्ध को **ओषधयः बिभ्रति**=ओषधियाँ धारण करती हैं, और **यम् आपः**=जिसको जल धारण करते हैं। **यम्**=जिस गन्ध को **गन्धर्वाः**=वेदवाणी के धारक ज्ञानी पुरुष **च**=तथा **अप्सरसः**=यज्ञादि कर्मों में संचरण करनेवाली स्त्रियाँ **भेजिरे**=सेवित करती हैं, **तेन**=उसी गन्ध से **मा**=मुझे **सुरभिं कृणु**=उत्तम गन्धवाला कर—मेरे जीवन को भी सुगन्धमय बना। २. मेरा जीवन इसप्रकार सुगन्धमय हो कि **कश्चन**=कोई भी **नः मा द्विक्षत**=हमसे द्वेष न करे।

भावार्थ—गन्ध पृथिवी का विशेष गुण है। सब ओषधियाँ व पृथिवी पर होनेवाले इस गन्ध को धारण किये हुए हैं। ज्ञानी पुरुष व क्रियाशील स्त्रियाँ उत्तम यशोगन्धवाले होते हैं। हमारा जीवन भी ज्ञान व कर्म से यशस्वी व सुगन्धित हो। कोई भी हमसे द्वेष न करे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदानुष्टुब्गर्भाजगती**॥

कमल-गन्ध

यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभ्रुः सूर्यायै विवाहे।
अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन॥ २४॥

१. **यः**=जो, हे पृथिवि! **ते गन्धः**=तेरा गन्ध **पुष्करम् आविवेश**=कमल में प्रविष्ट हुआ है तथा **यं गन्धम्**=जिस गन्ध को **अमर्त्याः**=ये अमरधर्मा वायु आदि देव **सूर्यायाः**=उषाकाल

के **विवाहे**=विशिष्टरूप से प्राप्त होने पर **अग्रे संजभ्रुः**=आगे और आगे प्राप्त कराते हैं। सूर्योदय के अवसर पर कमल खिलते हैं और उनपर से बहनेवाला वायु उनके पराग-गन्ध को अपने साथ आगे ले-जाता है। हे **पृथिवि**=भूमिमातः! **मा**=मुझे भी **तेन सुरभिं कृणु**=उस गन्ध से सुगन्धित जीवनवाला बना। २. जिस प्रकार वायुप्रवाह के साथ कमलगन्ध सर्वत्र प्रसृत होता है, उसी प्रकार मेरा जीवन सर्वतः यशोगन्ध से पूर्ण हो। उत्तमकर्मों को करता हुआ मैं यशस्वी बनूँ। **कश्चन**=कोई भी **नः मा द्विक्षत**=हमारे साथ द्वेष न करे।

भावार्थ—कमल-गन्ध की तरह हमारा जीवन उत्तम कर्मों की यशोगन्धवाला हो। हम सब के प्रिय बनें—किसी से हमारा द्वेष न हो। हम संसार-सरोवर में कमल की तरह अलिप्तभाव से रहें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**सप्तपदोष्णिगनुष्टुब्गर्भाशक्वरी**॥

भग-रुचि-वर्चस्

यस्ते॑ ग॒न्धः पु॑रु॒षेषु॒ स्त्री॒षु पुं॑सु॒ भगो॒ रुचिः॑।
यो अश्वे॑षु वी॒रेषु॒ यो मृ॒गेषू॒त ह॒स्तिषु॑।
क॒न्या ऽ यां॒ वर्चो॒ यद्भूमे॒ तेना॒स्माँ अपि॒ सं सृ॑ज॒ मा नो॑ द्विक्षत॒ कश्च॒न॥ २५॥

१. हे **भूमे**=भूमिमातः! **यः ते गन्धः**=जो तेरा गन्ध **पुरुषेषु**=पौरुषयुक्त मनुष्यों में **स्त्रीषु**=स्त्रियों में तथा **पुंसु**=(पु) पवित्र जीवनवाले पुरुषों में है, **यः**=जो **मृगेषु**=हरिणों में **उत**=और **हस्तिषु**=हाथियों में है और **यत्**=जो **कन्यायाम्**=युवति कन्या में **वर्चः**=वर्चस् (तेजोदीप्ति) के रूप में है, **तेन**=उस गन्ध से—'ऐश्वर्य दीप्ति व वर्चस्' (भगः रुचिः वर्चः) से **अस्मान् अपि मा संसृज**=हमें भी संसृष्ट कर। हमारा जीवन ऐसा हो कि **नः**=हमें **कश्चन**=कोई भी **मा द्विक्षत**=द्वेष न करे। हमारे साथ सबकी प्रीति हो।

भावार्थ—इस पृथिवी के सम्पर्क से उस-उस स्थान पर 'भग, रुचि व वर्चस्' दिखता है। हमारा जीवन भी 'ऐश्वर्य, दीप्ति व तेजस्विता' वाला हो। हमारा सभी से प्रेम हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शिला, भूमिः, अश्मा, पांसुः

शि॒ला भूमि॒रश्मा॑ पां॒सुः सा भूमि॒: सन्धृ॑ता धृ॒ता।
तस्यै॒ हिर॑ण्यवक्षसे पृथि॒व्या अ॑करं॒ नम॑: ॥ २६॥

१. यह पृथिवी कहीं **शिला**=शिला के रूप में है। ये शिलाएँ मकान आदि बनाने में उपयुक्त होती हैं। **भूमिः**=कहीं मैदानों के रूप में है, जहाँ कृषि से विविध अन्न उत्पन्न होते हैं। **अश्मा**=कहीं यह पत्थर-ही-पत्थर है, जिन्हें तोड़कर सड़कों व फर्श आदि के निर्माण में उपयुक्त किया जाता है। **पांसुः**=कहीं यह भूमि धूल के रूप में है, जिसे तेज़ वायु उड़ाकर आकाश में पहुँचा देती है और वहाँ यह मेघ के जलबिन्दुओं का केन्द्र बनती है। **सा भूमिः**=यह प्राणियों का निवासस्थानरूप पृथिवी **संधृता**=सम्यक् धारण की गई है, **धृता**=प्रभु ने इसे मर्यादा में स्थापित किया है। २. **तस्मै**=उस **हिरण्यवक्षसे**=हिरण्य को वक्षस्थल में लिये हुई, **पृथिव्यै**=पृथिवी के लिए **नमः अकरम्**=हम आदर करते हैं। 'इसको माता समझना तथा इससे दिये गये वानस्पतिक पदार्थों का ही प्रयोग करना' इसका आदर है।

भावार्थ—यह पृथिवी 'शिलाओं, मैदानों, पत्थरों व धूलि' के भिन्न-भिन्न रूपों में है। प्रभु से धारित व मर्यादा में स्थापित की गई है। इस हिरण्यवक्षा पृथिवी के लिए हम नमस्कार करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

विश्वधायाः पृथिवी

यस्यां॑ वृ॒क्षा वा॑नस्प॒त्या ध्रु॒वास्तिष्ठ॑न्ति वि॒श्वहा॑।
पृ॒थि॒वीं वि॒श्वधा॑यसं धृ॒ताम॒च्छाव॑दामसि॥ २७॥

१. **यस्याम्**=जिसमें **वृक्षाः**=वृक्ष, **वानस्पत्याः**=और नाना प्रकार के वनस्पति, **विश्वहा**=सदा **ध्रुवाः**=ध्रुव रूप से—निश्चल रूप से **तिष्ठन्ति**=स्थित हैं, उस **विश्वधायसं पृथिवीम्**=समस्त पदार्थों का धारण करनेहारी **धृताम्**=प्रभु से मर्यादा में स्थापित की गई भूमि को **अच्छावदामसि**=लक्ष्य करके हम परस्पर चर्चा करते हैं। २. मिलकर पृथिवी का ज्ञान प्राप्त करते हैं। उसके स्वरूप व उससे उत्पन्न वृक्षों-वनस्पतियों की चर्चा करते हैं।

भावार्थ=पृथिवी से उत्पन्न वृक्षों व वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त करके, उनका ठीक प्रयोग करते हुए हम अपना धारण करनेवाले बनते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां (प्रकामन्तः)

उ॒दीरा॑णा उ॒तासी॑ना॒स्तिष्ठ॑न्तः प्र॒क्राम॑न्तः।
प॒द्भ्यां दक्षि॑णस॒व्याभ्यां॒ मा व्य॑थिष्महि॒ भूम्या॑म्॥ २८॥

१. **उत् ईराणाः**=ऊपर पर्वतों पर चढ़ते हुए, **उत**=और **आसीनाः**=घरों में बैठे हुए, **तिष्ठन्तः**=कार्यवश किसी स्थान में स्थित हुए-हुए अथवा **दक्षिणसव्याभ्याम्**=दाहिने व बायें **पद्भ्याम्**=पैरों से **प्रक्रामन्तः**=गति करते हुए हम **भूम्याम्**=इसी पृथिवी पर **मा व्यथिष्महि**=पीड़ित न हों।

भावार्थ—हम इस पृथिवी पर विविध कार्यों में गति करते हुए किसी भी प्रकार से पीड़ित न हों। कार्य में लगे रहना ही पीड़ित न होने का साधन है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'विमृग्वरी' पृथिवी

वि॒मृग्व॑रीं पृथि॒वीमा व॑दामि क्ष॒मां भूमिं॒ ब्रह्म॑णा वावृधा॒नाम्।
ऊर्ज॑ं पु॒ष्टं बिभ्र॑तीमन्नभा॒गं घृ॒तं त्वा॒भि नि षी॑देम भूमे॥ २९॥

१. **विमृग्वरीम्**=विशिष्ट रूप से शोधन करनेवाली (मिट्टी से शोधन होता ही है—यह शरीर के विषों को भी चूस लेती है) **पृथिवीं आवदामि**=पृथिवी का मैं समन्तात् गुणगान करता हूँ। यह **क्षमाम्**=सब आघातों को सहनेवाली, **भूमिम्**=सब प्राणियों का निवास स्थान (भवन्ति भूतानि यस्याम्), **ब्रह्मणा वावृधानाम्**=(ब्रह्म=अन्नं) अन्नों के द्वारा सबका वर्धन करनेवाली है। २. **ऊर्जम्**='बल व प्राणशक्ति'-प्रद, **पुष्टम्**=पुष्टिकारक **अन्नभागं घृतम्**=भजनीय अन्न को तथा घृत को **बिभ्रतीम्**=धारण करती हुई, हे **भूमे**=भूमिमातः! **त्वा अभिनिषीदेम**=तुझपर हम समन्तात् निषण्ण हों—तेरी गोद में बैठें।

भावार्थ—यह पृथिवी शोधन का कारण बनती है। सहनेवाली, प्राणियों का निवासस्थान, तथा अन्न द्वारा हमारा खूब ही वर्धन करनेवाली है। बलप्रद व पुष्टिकारक भजनीय अन्न व घृत को धारण करती हुई इस पृथिवी पर हम समन्तात् निषण्ण हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गायत्री**॥

शुद्धा आपः

शुद्धा न आपस्तन्वे ∫ क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः।
पवित्रेण पृथिवि मोत्पुनामि॥ ३०॥

१. **शुद्धाः आपः**=शुद्ध जल **नः तन्वे**=हमारे शरीर के लिए व शक्ति-विस्तार के लिए—**क्षरन्तु**=क्षरित हों—बहें। **यः नः सेदुः**=जो भी हमारा विनाशक तत्त्व है, **तम्**=उसको **अप्रिये निदध्मः**=सबके अप्रीति के कारणभूत शत्रु में स्थापित करते हैं। विनाशक तत्त्व हमसे दूर हों। ये उनको प्राप्त हों जो सारे समाज के विद्विष्ट हैं। २. **पृथिवि**=विस्तृत भूमे! मैं **पवित्रेण**=तेरे इस पवित्र जल से **मा उत्पुनामि**=अपने को शुद्ध करता हूँ।

भावार्थ—पृथिवी से उद्भूत ये जल—कूप आदि से प्राप्त जल हमारे विनाशक तत्त्वों को नष्ट करके हमें पवित्र करते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पुरुषार्थ व अपतन

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात्।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः॥ ३१॥

१. हे **भूमे**=प्राणियों की निवास-स्थानभूत भूमे! **याः**=जो **ते**=तेरे **प्राचीः प्रदिशः**=पूर्व दिशा में होनेवाले प्रदेश हैं, **याः उदीचीः**=जो प्रदेश उत्तर दिशा में हैं, **याः**=जो **ते**=तेरे प्रदेश **अधरात्**=दक्षिण दिशा में (नीचे) हैं, **च याः**=और जो **पश्चात्**=पश्चिम दिशा में हैं, **ताः**=वे सब प्रदेश **चरते मह्यम्**=चलते हुए—श्रम करते हुए मेरे लिए **स्योनाः भवन्तु**=सुखद हों। २. **भुवने**=इस लोक में **शिश्रियाणः**=अपने कर्त्तव्य-कर्मों का खूब ही सेवन करता हुआ मैं **मा निपप्तम्**=पतन को न प्राप्त होऊँ।

भावार्थ—पुरुषार्थी के लिए सब भू-प्रदेश सुखद हैं। कर्त्तव्य-कर्मों का सेवन करता हुआ व्यक्ति कभी पतन को प्राप्त नहीं होता।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पुरस्ताज्ज्योतिस्त्रिष्टुप्**॥

प्रशस्त रक्षण व्यवस्था

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्ठा मोत्तरादधरादुत।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन्परिपन्थिनो वरीयो यावया वधम्॥ ३२॥

१. हे **भूमे**=भूमिमातः! **नः**=हमें **पश्चात्**=पीछे से—पश्चिम से **मानुदिष्ठाः**=व्यथित न कर। **मा पुरस्तात्**=सामने से व्यथित न कर। **उत्तरात् उत अधरात्**=उत्तर से व दक्षिण मे **मा**=पीड़ित न कर। हे भूमे! **नः**=हमारे लिए **स्वस्ति भव**=कल्याण करनेवाली हो। २. हमें मार्गों में **परिपन्थिनः**=लुटेरे, चोर **मा विदन्**=प्राप्त न हों। **वधम्**=इन लुटेरों से हनन साधन आयुधों को **वरीयः यावया**=बहुत ही दूर पृथक् कर। इनके अस्त्र हमसे दूर ही रहें।

भावार्थ—इस पृथिवी पर हमें किसी भी ओर से पीड़ा न पहुँचे। मार्गों में लुटेरों का कष्ट न हो। इनके वध-साधन हमसे दूर ही रहें, अर्थात् राष्ट्र में रक्षण-व्यवस्था प्रशस्त हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सूर्य व दृष्टिशक्ति

यावत्तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना।
तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम्॥ ३३॥

१. हे **भूमे**=भूमिमातः! **मेदिना सूर्येण**=इस स्नेही मित्र सूर्य की सहायता से **यावत्**=जितना भी **ते अभिविपश्यामि**=तेरे इन सब पदार्थों को देखता हूँ **तावत्**=उतना ही **मे चक्षुः**=मेरी आँख **मा मेष्ट**=हिंसित न हो। **उत्तरां उत्तरां समाम्**=अगले और अगले वर्ष यह हिंसित न होकर अपना कार्य ठीक से करती रहे।

भावार्थ—इस पृथिवी पर हमारे स्नेही मित्र इस सूर्य की सहायता से हमारी दृष्टिशक्ति ठीक बनी रहे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदात्रिष्टुब्बृहतीगर्भातिजगती**॥

सुखद-शयन

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम्।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत्पृष्टीभिरधिशेमहे।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि॥ ३४॥

१. हे **भूमे**=भूमिमातः! **यत्**=जब **शयानः**=लेटा हुआ मैं **दक्षिणं सव्यं पार्श्वम् अभि**=दाहिने या बायें पासे की ओर **पर्यावर्ते**=करवट लूँ अथवा **यत्**=जब हम **उत्तानाः**=ऊर्ध्वमुख **प्रतीचीं त्वा**=जिसके पश्चिम की ओर हमारे पाँव हैं, ऐसी तुझपर **पृष्टीभिः**=पीठ के मोहरों के बल पर **अधिशेमहे**=शयन करते हैं, तब **तत्र**=वहाँ, हे **भूमे**=भूमिमातः! **नः मा हिंसीः**=हमें हिंसित मत कर। **सर्वस्व प्रतिशीवरि**=तू तो सबको अपनी गोद में सुलानेवाली जननी है। हे जननि! तू हमें हिंसित न होने देना।

भावार्थ—हम समय पर भूमि माता की गोद में सुखपूर्वक शयन करें।

सूचना—यहाँ यह स्पष्ट है कि (क) यथासम्भव नीचे सोना। (ख) पाँव पश्चिम में हो। (ग) सदा एक पासे नहीं लेटे रहना। (घ) कभी-कभी उत्तान शयन भी आवश्यक है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पृथिवी के 'मर्म व हृदय' का अपीड़न

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्॥ ३५॥

१. हे **भूमे**=सब वनस्पतियों को जन्म देनेवाली पृथिवि! **यत् ते विखनामि**=जब मैं तेरा हल द्वारा अवदारण करके कुछ बोता हूँ, **तत्**=तब वह **क्षिप्रं अपिरोहतु**=शीघ्र प्रादुर्भूत हो—अंकुरित होकर भूमि से ऊपर प्रकट हो। भूमि खूब उपजाऊ हो। २. हे **विमृग्वरि**=विशेषरूप से शुद्ध करनेवाली पृथिवि! मैं **ते**=तेरे **मर्म**=मर्मस्थानों को **मा अर्पिपम्**=पीड़ित न करूँ (रिफ to injure), **वि ते हृदयम्**=तेरे हृदय को **मा**=विनष्ट न करूँ। पृथिवी के ओषधि-पोषक अंश ही उसके 'मर्म' हैं और इसके रसप्रद अंश ही इसका हृदय है। इन्हें कभी नष्ट नहीं करना चाहिए, अन्यथा भूमि अनुपजाऊ व बंजर हो जाएगी।

भावार्थ—हम पृथिवी के मर्मों व हृदय को पीड़ित न करते हुए ही इसपर हल चलाएँ

तभी इसमें बोये गये बीज सम्यक् अंकुरित होंगे।

सूचना—भूमि पर हल चलाते समय खूब गहरा खोदना और एक बार ही अधिक फ़सल प्राप्त करने की कामना करना उचित नहीं। इससे भूमि शीघ्र बंजर हो जाती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**विपरीतपादलक्ष्मापङ्क्तिः**॥

ऋतुचक्र

ग्रीष्मस्ते॑ भूमे व॒र्षाणि॑ शर॒द्धे॑म॒न्तः शिशि॑रो वस॒न्तः।
ऋ॒तव॑स्ते॒ विहि॑ता हाय॒नीर॑होरा॒त्रे पृ॑थिवि नो दुहाताम्॥ ३६॥

१. हे **भूमे**=भूमिमातः! '**ग्रीष्मः, वर्षाणि, शरत्, शिशिरः, वसन्तः**'=ये ग्रीष्म आदि ऋतुएँ **ते**=तेरी हैं। ये **ते**=तेरी **ऋतवः**=ऋतुएँ **हायनीः**=प्रतिवर्ष आनेवाली **विहिताः**=की गई हैं। प्रतिवर्ष यह ऋतुचक्र तुझपर चलता है और वर्ष की पूर्ति होती है। २. हे **पृथिवि**=अतिशय विस्तारवाली भूमे! **अहोरात्रे**=दिन व रात **नः**=हमारे लिए **दुहाताम्**=इन ऋतुओं का दोहन करनेवाले हों। इन ऋतुओं में हमें सदा उत्कृष्ट ओषधि-वनस्पति प्राप्त होती रहें।

भावार्थ—प्रभु ने इस पृथिवी पर प्रतिवर्ष चलनेवाले एक ऋतुचक्र का स्थापन किया है। दिन और रात हमारे लिए इस ऋतुचक्र से उत्तम ओषधियों-वनस्पतियों का दोहन करनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

'शक्र, वृषा, वृषभ' राजा

याप॑ स॒र्पं वि॒जमा॑ना वि॒मृग्व॑री॒ यस्या॒मास॑न्न॒ग्नय॒ो ये अ॒प्सु॑ अ॒न्तः।
परा॒ दस्यू॒न्दद॑ती देवपी॒यूनिन्द्रं॑ वृणा॒ना पृ॑थि॒वी न वृ॒त्रम्।
श॒क्राय॑ दधे वृष॒भाय॒ वृष्णे॑॥ ३७॥

१. **या**=जो पृथिवी **सर्पं अपविजमाना**=सर्प के समान कुटिल पुरुष से भय खाती हुई कुटिल पुरुषों से दूर ही रहना चाहती है, **विमृग्वरी**=विशिष्ट रूप से शुद्ध-पवित्र करनेवाली, **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **अग्नयः**=वे प्रशस्त 'माता-पिता व आचार्य'-रूप अग्नियाँ **आसन्**=हैं, **ये**=जोकि **अप्सु अन्तः**=प्रजाओं के अन्दर निवास करती हैं '**पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्मातागिनर्दक्षिणः स्मृतः। गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी**'। यह **पृथिवी**=भूमि **देवपीयून्**=देववृत्ति के पुरुषों का हिंसन करनेवाले **दस्यून्**=दस्युओं को **पराददती**=दूर करने के हेतु से **इन्द्रं वृणाना**=शत्रुओं के नाशक, जितेन्द्रिय राजा का वरण करती है, **न वृत्रम्**=ज्ञान पर पर्दा डाल देनेवाले विलासी राजा का वरण नहीं करती। २. यह पृथिवी **शक्राय**=शक्तिशाली **वृष्णे**=प्रजाओं पर सुखों का सेचन करनेवाले, **वृषभाय**=श्रेष्ठ राजा के लिए ही **दधे**=धारण की जाती है। राजा वही ठीक है जोकि 'शक्र' है, 'वृषा' है और अतएव 'वृषभ' है। ऐसा ही राजा राष्ट्र-शकट का वहन करने में समर्थ होता है।

भावार्थ—यह पृथिवी कुटिलवृत्ति के, देवों के हिंसक दस्युओं से भय खाती है। यह प्रजाओं में प्रशस्त 'माता, पिता व आचार्य'-रूप अग्नियों से हमारे जीवन को शुद्ध बनाती है। यह 'इन्द्र' का वरण करती है, न कि वृत्र का। इसका शासक वही ठीक है जो 'शक्तिशाली, प्रजाओं पर सुखों का सेचन करनेवाला व श्रेष्ठ' है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाजगती**॥

आदर्श भूमि

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते।
ब्रह्माणो यस्मामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः।
युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे॥ ३८॥

१. **यस्याम्**=जिस भूमि पर **सदोहविर्धाने**=सभामण्डप व यज्ञस्थलियाँ बनायी जाती हैं, **यस्याम्**=जिसपर **यूपः**=यज्ञस्तम्भ **निमीयते**=निश्चित मानपूर्वक बनाया जाता है। **यस्याम्**=जिसपर **ब्रह्माणः**=वेदज्ञ विद्वान् **ऋग्भिः**=ऋचाओं के द्वारा तथा **साम्ना**=साममन्त्रों के द्वारा **अर्चन्ति**=प्रभु का अर्चन करते हैं 'ऋग्भिः' विज्ञान का संकेत करता है तथा 'साम्ना' श्रद्धा का। प्रभु का उपासन विज्ञान व श्रद्धा के समन्वय से ही होता है। २. **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **यजुर्विदः**=यजुर्मन्त्रों के ज्ञाता **ऋत्विजः**=ऋतु के अनुसार यज्ञ करनेवाले लोग **युज्यन्ते**=अपने यज्ञादि कर्मों में युक्त होते हैं तथा **सोमं पातवे**=शरीर में सोम के पान के लिए **इन्द्राय**=परमैश्वर्यशाली, शत्रुविद्रावक प्रभु के लिए **युज्यन्ते**=योग में प्रवृत्त होते हैं। प्रभु का स्मरण वासनाविनाश के द्वारा हमें सोमपान के योग्य बनाता है।

भावार्थ—एक आदर्श राष्ट्र में सभामण्डप व यज्ञस्थलियाँ होती हैं। यहाँ यज्ञस्तम्भों का निर्माण होकर ऋत्विजों द्वारा यज्ञ किये जाते हैं, ज्ञानियों द्वारा प्रभु का अर्चन होता है तथा शरीर में सोमरक्षण के लिए शत्रुविद्रावक प्रभु से चित्तवृत्ति का सम्पर्क बनाया जाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सप्तसत्र, यज्ञ व तप

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः। सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह॥ ३९॥

१. **यस्याम्**=जिस भूमि पर **पूर्वे**=अपना पालन व पूरण करनेवाले **भूतकृतः**=(right, proper, fit भूत) उचित कर्मों को करनेवाले **ऋषयः**=तत्त्वद्रष्टा व वासनाओं का संहार करनेवाले ज्ञानीलोग **गाः उदानृचुः**=ज्ञानवाणियों के द्वारा प्रभु का स्तवन (अर्चन) करते हैं। २. इस भूमि पर **वेधसः**=ज्ञानी लोग (learned man) **सप्तसत्रेण**=देवपूजन से तथा **तपसा सह**=तप के साथ सदा ज्ञानवाणियों का उच्चारण करते हैं।

भावार्थ—आदर्श राष्ट्र में लोग अपना पालन व पूरण करते हैं, यथार्थ बातों को करते हैं, वासनाओं का संहार करते हैं। यहाँ ज्ञानी लोग 'सप्तसत्र, यज्ञ व तप' से युक्त होते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

इन्द्र के नेतृत्व में

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे। भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः॥ ४०॥

१. **सा भूमिः**=वह, गतमन्त्र के अनुसार यज्ञों व तपोंवाली भूमि **नः**=हमारे लिए **यत् धनं कामयामहे**=जिस धन की कामना करे, उस धन को **आदिशतु**=सर्वथा प्रदान करे। **भगः**=वह भजनीय प्रभु **अनुप्रयुङ्क्ताम्**=हमें शिक्षित करे (to give instruction)—हम प्रभु के निर्देश में चलें। **इन्द्रः**=वह शत्रुविद्रावक प्रभु ही **पुरोगवः एतु**=हमारा अग्रगामी हो—हम प्रभु के अनुयायी बनें।

भावार्थ—जिस राष्ट्र में यज्ञ व तप का प्राधान्य होता है, वहाँ सब इष्ट धन प्राप्त होते हैं। हम तो यही चाहें कि प्रभु हमें मार्ग का निर्देश करें और हमारे पुरोगामी हों—हम प्रभु के अनुयायी बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाककुम्मतीशक्वरी**॥

गायन, नर्तन व युद्ध

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यै ∫ लबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥ ४१॥

१. **यस्यां भूम्याम्**=जिस भूमि पर **मर्त्याः**=मनुष्य **गायन्ति नृत्यन्ति**=गायन व नर्तन करते हैं और **व्यैलबाः**=(ऐलव noise, हैं) विशिष्ट शब्दोंवाले—युद्ध के आह्वान के घोषवाले मनुष्य **यस्यां युध्यन्ते**=जिसपर शत्रुओं के साथ युद्ध करते हैं। **यस्याम्**=जिस भूमि पर **आक्रन्दः**=शत्रुओं को ललकारना होता है और **दुन्दुभिः वदति**=युद्ध का नगारा बजता है **सा भूमिः**=वह पृथिवी **नः सपत्नान्**=हमारे शत्रुओं को **प्रणुदताम्**=परे धकेलनेवाली हो। २. यह **पृथिवी**=भूमिमाता **मा**=मुझे **असपत्नम्**=शत्रुरहित **कृणोतु**=करे। इस पृथिवी पर कहीं गायन व नर्तन हो रहा होता है, तो कहीं युद्ध। युद्ध के समय गायन व नर्तन सम्भव नहीं रहता। हम असपत्न बनकर, युद्धों की स्थिति से ऊपर उठकर ही हर्ष का जीवन बिता सकते हैं।

भावार्थ—इस पृथिवी पर एक ओर युद्ध हैं, दूसरी ओर हर्षपूर्वक गायन व नर्तन हैं। प्रभु हमें असपत्न बनाएँ, जिससे हम युद्धों से ऊपर उठकर जीवन का आनन्द ले-सकें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**स्वराडनुष्टुप्**॥

व्रीहियवौ

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे॥ ४२॥

१. **यस्याम्**=जिस पृथिवी पर **व्रीहियवौ अन्नम्**=चावल व जौ मनुष्य के प्रशस्त भोजन हैं। **यस्याः**=जिस पृथिवीमाता के **इमाः**=ये **पञ्च**=पाँच **कृष्टयः**=मनुष्य 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद' पुत्ररूप हैं। २. उस **पर्जन्यपत्न्यै**=मेघ की पत्नीरूप, **वर्षमेदसे**=वृष्टिजलरूप स्नेह-वाली—वृष्टिजल से स्निग्ध **भूम्यै**=भूमि के लिए **नमः अस्तु**=हमारा नमस्कार हो। इस भूमि का हम उचित आदर करें। इसमें अन्नोत्पादन के लिए यत्नशील हों। मेघ इस पृथिवी का पति है, वह पृथिवी पर जल का सेचन करता है। इस वृष्टि-जल से स्निग्ध पृथिवी में अन्न का उत्पादन होता है।

भावार्थ—हम व्रीहि व यव को ही अपना मुख्य भोजन बनाएँ। सभी को अपना भाई समझें। वृष्टि-जल से स्निग्ध होनेवाली भूमि में अन्नोत्पादन के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**विराडास्तारपङ्क्तिः**॥

नगर व क्षेत्र

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते।
प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु॥ ४३॥

१. **यस्याः**=जिस पृथिवी के **पुरः**=नगर **देवकृताः**=ज्ञानी (समझदार) शिल्पियों द्वारा बनाये गये हैं—अतएव जिनमें स्वास्थ्य आदि के साधनों की सुव्यवस्था है। **यस्याः**=जिस पृथिवी के **क्षेत्रे**=खेतों में **विकुर्वते**=वैश्य लोग विशिष्ट कृषि कर्मों को करते हैं, उस **विश्वगर्भाम्**=सब प्राणियों को अपने में धारण करनेवाली **पृथिवीम्**=पृथिवी को **आशाम् आशाम्**=प्रत्येक दिशा में **प्रजापतिः**=वे प्रभु **नः**=हमारे लिए **रण्यां कृणोतु**=रमणीय करें।

भावार्थ—इस पृथिवी पर उत्तम नगरों का देवों द्वारा निर्माण हो। यहाँ क्षेत्रों में वैश्य विविध

बीज वपन आदि कर्मों को करें। प्रभु इस पृथिवी को हमारे लिए सर्वतः रमणीय बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**जगती**॥

वसुदा, वसुधा

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना॥ ४४॥

१. **गुहा**=अपनी गुहाओं में **बहुधा निधिं बिभ्रती**=विविध कोशों को धारण करती हुई **पृथिवी**=यह भूमि **मे**=मेरे लिए **वसु**=धन को **मणिम्**=वैदूर्य आदि मणियों को तथा **हिरण्यम्**=सुवर्ण को **ददातु**=दे। २. यह **वसुदाः**=धनों को देनेवाली **देवी**=दिव्यगुणयुक्त पृथिवी **रासमाना**=वसुओं को देती हुई, **सुमनस्यामाना**=हमारे मन का उत्तम साधन बनती हुई **वसूनि दधातु**=वसुओं को हमारे लिए दे। यह भूमिमाता हमारे लिए वसुओं का धारण करे।

भावार्थ—यह पृथिवी वसुधा है। यह हमारे लिए वसुदा हो। वसुओं को प्राप्त करके हम सौमनस्यवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**जगती**॥

विवाचसं—नानाधर्माणम्

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥ ४५॥

१. **बहुधा**=बहुत प्रकार से **विवाचसम्**=विविध भाषाओं के बोलनेवाले, **नानाधर्माणम्**=अनेक प्रकार के धर्मों के माननेवाला **जनम्**=जनसमुदाय **यथा ओकसम्**=जैसे एक घर में रहता है उसी प्रकार अनेक प्रकर की बोली और कर्म करनेवालों को **बिभ्रती**=धारण करती हुई यह **पृथिवी**=भूमिमाता **मे**=मेरे लिए **सहस्रम्**=हज़ारों **द्रविणस्य धाराः**=धन की धाराओं को **दुहाम्**=प्रपूरित करे—दे। २. यह पृथिवी मेरे लिए इसप्रकार धन की धाराओं का दोहन करे, **इव**=जैसेकि **अनपस्फुरन्ती**=न हिलती (Shake, tremble) हुई **ध्रुवा**=स्थिरता से स्थित **धेनुः**=गाय हमारे लिए दुग्ध का प्रपूरण करती है। यह पृथिवी भी कम्परहित हुई-हुई, मर्यादा में चलती हुई हमारे लिए द्रविणों का दोहन करे। यहाँ राष्ट्रों में सुव्यवस्था के कारण उपद्रव (Agitaion) ही न होते रहें (अनपस्फुरन्ती) तथा लोग नियमों का पालन करनेवाले हों (ध्रुवा)।

भावार्थ—एक राष्ट्र में भिन्न-भिन्न बोली बोलनेवाले—भिन्न प्रकार के कर्म करनेवाले लोग, एक घर की भाँति निवास करें। राष्ट्र में हलचलें (उपद्रव) ही न होते रहें—लोग व्यवस्थित जीवनवाले हों तब वह पृथिवी सबके लिए धन की धाराओं को प्राप्त करानेवाली होती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भापराशक्वरी**॥

'सर्प-वृश्चिक' निराकरण

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा हेमन्तजब्धो भूमलो गुहा शये।
क्रिमिर्जिन्वत्पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः
सर्पन्मोप सृपद्यच्छिवं तेन नो मृड॥ ४६॥

१. हे **पृथिवि**=भूमिमातः! **यः ते**=जो तेरे **सर्पः**=साँप **वृश्चिकः**=बिच्छू **तृष्टदंश्मा**=तीखे काटनेवाले हैं, अथवा अपने दंशन से प्यास लगानेवाले हैं तथा **हेमन्तजब्धः**=हेमन्त काल के शीत से पीड़ित **भूमलः**=भौंरे जाति के जीव **गुहाशये**=गुहाओं में शयन करते हैं अथवा **हेमन्तजब्धः**=हिम-विनाशक, अर्थात् ज्वर के उत्पादक **भूमलः**=घुमरी पैदा करनेवाले कृमि

गुहाशये=बिलों में पड़े सोया करते हैं। २. हे पृथिवि! ऐसे **यत् यत्**=जो भी **क्रिमिः**=कीट **प्रावृषि**=वर्षा ऋतु में **जिन्वत्**=प्राणित होते हुए **एजति**=गतिशील होते हैं, **तत्**=वह **सर्पन्**=गति करता हुआ **नः मा उपसृपत**=हमारे समीप न आये। हे पृथिवि! **यत् शिवम्**=जो हमारे लिए कल्याणकारी हो **तेन नः मृड**=उससे हमें सुखी कर।

भावार्थ—निवास स्थानों में सर्प, वृश्चिक या अन्य कृमि-कीटों का भय न हो। लोग इनके भय से रहित हुए-हुए सुखपूर्वक जीवन बिता पाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भापराशक्वरी**॥

जनायन-शकटवर्त्म-'रथवर्त्म'-शकटवर्त्म-जनायन

ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्त्मानसश्च यातवे।
यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं
यच्छिवं तेन नो मृड॥ ४७॥

१. हे पृथिवि! **ये**=जो **ते**=**बहवः**=बहुत-से **जनायनाः**=(जन+अयन्) मनुष्यों के जाने के मार्ग हैं, **रथस्य वर्त्म**=(मध्य में जो) रथ का मार्ग है, **च**=और **अनसः यातवे**=बैलगाड़ियों के जाने के लिए जो मार्ग है एवं, सड़क किनारों पर जनमार्ग हैं, मध्य में रथमार्ग हैं, इनके बीच में दोनों ओर गाड़ियों के मार्ग हैं। २. **यैः**=जिनसे **भद्रपापाः**=परोपकारी व स्वार्थी (अच्छे व बुरे) **उभये**=दोनों प्रकार के लोग **संचरन्ति**=बराबर चला करते हैं, हम **तं पन्थानम्**=उस मार्ग को **जयेम**=विजय करें—प्राप्त करें, जोकि **अनमित्रम्**=शत्रुरहित है, तथा **अतस्करम्**=चोर-डाकू से रहित है। हे पृथिवि! **यत्**=जो **शिवम्**=कल्याणकर पदार्थ है, **तेन नः मृड**=उससे हमें सुखी कर।

भावार्थ—हमारे राष्ट्र में मार्ग सुव्यवस्थित हों—'पैदलमार्ग, शकटमार्ग व रथमार्ग' इसप्रकार मार्ग सुविभक्त हों। सबके लिए आने-जाने की सुविधा हो। मार्गों में शत्रुओं का भय न हो। हमें पृथिवी सुखकर पदार्थों को प्राप्त कराए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पुरोऽनुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

'क्षमा' (सहनशीला पृथिवी)

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥ ४८॥

१. **मल्वम्**=(मल् to hold, possess) धन को पकड़कर रखनेवाले कृपण को भी **बिभ्रती**=धारण करती हुई यह पृथिवी **गुरुभृत्**=(गुरु great) विशाल हृदयवालों को धारण करती है। **भद्रपापस्य**=भले-बुरे सभी के **निधनम्**=निवास (residence) को **तितिक्षुः**=यह सहनेवाली है। यह 'कृपण, उदार, भद्र व पाप' सभी का धारण करती है—अपने पर सभी के निवास को सहती है। २. यह **पृथिवी**=भूमिमाता **वराहेण**=(मेघेन) मेघ के साथ **संविदाना**=ऐकमत्य को प्राप्त हुई-हुई, अर्थात् अपने पति पर्जन्य से मिलकर—मेघ द्वारा वृष्टि होने पर **मृगाय**=उत्तम बीजों का अन्वेषण करनेवाले **सूकराय**=(सुवं प्रसवं करोति) बीजवपन करनेवाले कृषक के लिए **विजिहीते**=विशेषरूप से प्राप्त होती है। कृषक इसमें बीजवपन करते हैं और यह विविध अन्नों को जन्म देती है।

भावार्थ—इस पृथिवी पर 'कृपण, उदार व भले-बुरे' सभी रहते हैं। यह पृथिवी मेघ से मिलकर कृषक के लिए विविध अन्नों को प्राप्त कराती है। इस अन्न द्वारा वह सभी का पोषण करती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**जगती**॥

आरण्य पशुओं से रक्षण

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।
उलं वृकं पृथिवी दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप बाधयास्मत्॥ ४९॥

१. हे भूमिमातः! **ये**=जो **ते**=तेरे **आरण्याः पशवः**=जंगली पशु हैं, **वने हिताः**=वनों में स्थापित **मृगाः**=मृग हैं (जो ग्रामों में आकर खेतियों को विनष्ट कर देते हैं), जो **पुरुषादः**=मनुष्यों को भी खा जानेवाले **सिंहाः व्याघ्राः**=शेर व चीते **चरन्ति**=इधर-उधर घूमते हैं (चिड़ियाघर में रखे हुए नहीं)। इसी प्रकार **उलम्**=सियार (A kind of wild animal) **वृकम्**=भेड़िया, **दुच्छुनाम्**=दुष्ट कुत्ते, **ऋक्षीकाम्**=रीछ आदि को **इतः**=यहाँ से **अपबाधय**=दूर कर। २. यह **पृथिवि**=पृथिवी **रक्षः**=राक्षसीवृत्ति के पुरुषों को अथवा अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले रोगकृमियों को **अस्मत्**=हमसे दूर ही रोक दे।

भावार्थ—राजा आरण्य पशुओं से प्रजा की रक्षा करे। इस बात का ध्यान करे कि मृग ही खेतियों को न चर जाएँ। सियार, भेड़िये, पागल कुत्ते आदि के उपद्रव न हों। रीछ व रोगकृमि हमसे दूर रहें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अवाञ्छनीय तत्त्वों का निराकरण

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः।
पिशाचान्त्सर्वा रक्षांसि तानस्मद्भूमे यावय॥ ५०॥

१. **ये**=जो लोग **गन्धर्वाः**=(गन्धं अर्वति=अर्व गतौ) इतर-फुलेल आदि गन्धों में ही खेलनेवाले हैं **अप्सरसा**=और जो स्त्रियाँ स्वर्गलोक की वेश्याएँ ही प्रतीत होती हैं—वेशभूषा की चमक-दमक ही जिनका जीवन है, **ये च**=और जो **अरायाः**=एकदम अदान की वृत्तिवाले हैं (रा दाने) **किमीदिनः**=अब क्या खाएँ और अब क्या हड़प करें (किम् इदानीम्, किम् इदानीम्) यही जिनकी वृत्ति है। हे **भूमे**=भूमिमातः! **तान्**=उनको **अस्मत् यावय**=हमसे पृथक् कर। २. **पिशाचान्**=मांस खानेवाली क्रूरवृत्तिवाले पुरुषों को तथा **सर्वा रक्षांसि**=सब राक्षसों को—अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवालों को हमसे पृथक् कर।

भावार्थ—हमारे मध्य में 'भोगप्रधान जीवनवाले (गन्धर्व+अप्सरस्), कृपण, औरों का धन हड़प करनेवाले, पिशाच व राक्षस' न हों, हमारे समाज से ये दूर ही रहें, जिससे इनका कुप्रभाव समाज को दूषित करनेवाला न हो।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भाककुम्मतीशक्वरी**॥

विविध पक्षी—वायु, आँधी व लू

यां द्विपादः पक्षिणः संपतन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान्।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः॥ ५१॥

१. **याम्**=जिस पृथिवी पर **द्विपादः**=ये दो पाँववाले अथवा पृथिवी व अन्तरिक्ष पर दोनों स्थानों में गतिवाले (द्वयोः पद्यन्ते) **पक्षिणः**=पक्षी **संपतन्ति**=सम्यक् गतिवाले होते हैं, **हंसाः**=हंस, **सुपर्णाः**=गरुड़, **शकुनाः**=गिद्ध या चील (Vulture or kite) तथा **वयांसि**=कौवे (Crow) जिसपर उड़ा करते हैं, वह यह हमारी भूमिमाता है। २. **यस्याम्**=जिसमें **मातरिश्वा**=अन्तरिक्ष

में निरन्तर गतिवाला यह **वातः**=वायु **ईयते**=चलता है। **रजांसि कृण्वन्**=सारे अन्तरिक्ष में धूल-ही-धूल फैलाता हुआ, **च**=और **वृक्षान् च्यावयन्**=वृक्षों को अपने स्थान से च्युत करता हुआ यह वायु आँधी के रूप में चलता है। इस **वातस्य प्रवाम् उपवाम् अनु**=वायु के प्रबलवेग (प्रवा) व निरन्तर बहने (उपवा) के साथ **अर्चिः**=गर्मी की ज्वाला (लू) भी **वाति**= चलती है। यह प्रचण्ड लू भी दुर्गन्ध की समाप्ति व क्रिमियों के विनाश के लिए आवश्यक ही होती है।

भावार्थ—इस पृथिवी पर नाना प्रकार के पक्षियों का सम्पतन होता है। यहाँ अन्तरिक्ष में वायु निरन्तर बहती है—कभी वह आँधी के रूप में होती है और वृक्षों को उखाड़ रही होती है और कभी-कभी यह प्रचण्ड लू के रूप में चलती हुई सब रोगकृमियों व दुर्गन्ध का विनाश करती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भापरातिजगती**॥

दिन-रात, वृष्टि, गौवें व प्रिय तेज

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि।
वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनिधामनि॥ ५२॥

१. **यस्यां भूम्याम् अधि**=जिस भूमि पर **कृष्णं अरुणं च**=एक तो अन्धकारमय, परन्तु दूसरा प्रकाशमय **अहोरात्रे**=रात्रि और दिन **संहिते**=परस्पर मिलाकर रखे हुए **विहिते**=स्थापित किये गये हैं। दिन के बाद रात्रि आती है और रात्रि के बाद दिन। इसप्रकार ये परस्पर 'संहित' (सम्बद्ध) हैं। एक प्रकाशमय है, दूसरी अन्धकारमय। २. यह **भूमिः**=पृथिवी समय-समय पर **वर्षेण वृता**=वृष्टिजल से आच्छादित होती रहती है और इसप्रकार यह **भद्रया आवृता**=(भद्रा A cow) गौओं से आवृत होती है। वृष्टि से चारे की कमी नहीं रहती और ये गौवें खूब फूलती-फलती हैं। **सा**=वह वृष्टि व गौवों से आच्छादित भूमि हमें **नः**=हमसे **प्रिये**=प्रीति करनेवाले **धामनिधामनि**=प्रत्येक तेज (Energy) में **दधातु**=स्थापित करे।

भावार्थ—प्रभु ने हमारे जीवन के लिए दिन व रात का क्रम बाँधा है। इसपर वृष्टि व गौवों की व्यवस्था की है। वे गौवें हमारे प्रिय तेज का कारण बनती हैं—अपने दूध के द्वारा हमें तेजस्विता प्राप्त कराती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पुरोबार्हतानुष्टुप्**॥

व्यचः—मेधा

द्यौश्च मे इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च सं ददुः॥ ५३॥

१. **द्यौः च**=द्युलोक, **पृथिवी च**=पृथिवीलोक, **अन्तरिक्षं च**=और अन्तरिक्षलोक **मे**=मेरे लिए **इदं व्यचः**=इस विशालता—विशाल हृदयता (Expanse, Vastness) को दें। द्युलोकस्थ सूर्य सभी के लिए प्रकाश देता है, पृथिवी से उत्पन्न फूल-फल सभी भद्र-पापियों का पोषण करते हैं, अन्तरिक्ष में बहनेवाला वायु सभी को जीवन देता है। मेरे हृदय में भी सभी के लिए स्थान हो। २. **अग्निः**=पृथिवी का मुख्यदेव 'अग्नि', **सूर्यः**=द्युलोक का मुख्य देव 'सूर्य', **आपः**=अन्तरिक्ष में मेघस्थ जल, **विश्वेदेवाः च**=और सब देव मिलकर मुझे **मेधां संददुः**=बुद्धि देनेवाले हों। सभी देवों की अनुकूलता में मैं स्वस्थ मस्तिष्क बनूँ। सब देवों की अनुकूलता होने पर ही स्वास्थ्य प्राप्त होता और बुद्धि भी स्वस्थ बनी रहती है।

भावार्थ—त्रिलोकी के विस्तार का चिन्तन मुझे भी विशाल बनाये। सूर्य आदि सब देव

मुझे स्वस्थ बनाते हुए स्वस्थ मस्तिष्कवाला करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अभीषाट्—विश्वषाट्

अहमस्मि सहमान उत्तरो नाम भूम्याम्। अभीषाडस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः॥५४॥

१. **अहम्**=मैं **सहमानः**='सर्दी, गर्मी' आदि द्वन्द्वों को सहनेवाला और **भूम्याम्**=इस पृथिवी पर **उत्तरः नाम अस्मि**=उत्कृष्टतर यश-(नाम)-वाला हूँ। **अभीषाट् अस्मि**=मैं चारों ओर से आक्रमण करनेवाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं का मषर्ण करनेवाला हूँ। **विश्वाषाट्**=(विशन्ति) न चाहते हुए भी मेरे अन्दर घुस आनेवाले इन शत्रुओं का मैं पराभव करनेवाला हूँ। **आशां आशां विषासहिः**=मैं प्रत्येक दिशा में शत्रुओं को पराजित करनेवाला हूँ। अथवा (आशा=इच्छा) सब इच्छाओं को कुचल देनेवाला हूँ।

भावार्थ—इस भूपृष्ठ पर मैं द्वन्द्वों का सहन करनेवाला बनूँ और इसप्रकार उत्कृष्ट जीवनवाला होऊँ। चारों ओर से आक्रमण करते हुए व मेरे न चाहते हुए भी मुझमें प्रवेश करते हुए काम-क्रोध आदि को मैं जीतूँ। सब भौतिक इच्छाओं से ऊपर उठूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सु-भूतम्

अदो यद्देवि प्रथमाना पुरस्ताद्बैवैरुक्ता व्यसर्पो महित्वम्।
आ त्वा सुभूतमविशत्तदानीमकल्पयथाः प्रदिशश्चतस्रः॥ ५५॥

१. हे **देवि**=हमारे सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली भूमिमातः! **यत्**=जब तूने **पुरस्तात्**=प्रारम्भ में **अदः महित्वम्**=उस महत्त्व को—विशालता को **व्यसर्पः**=(सृप गतौ) प्राप्त किया, तो **देवैः**=विद्वानों से **'प्रथमाना' उक्ता**=विस्तार को प्राप्त होती हुई 'पृथिवी' इस रूप में कही गई। २. **तदानीम्**=उस समय **त्वा**=तुझमें **सुभूतम्**=उत्तम ऐश्वर्य—उत्तम स्थिति (Well-being, Welfare) **आ आविशत्**=समन्तात् प्रविष्ट हुई। तूने **चतस्रः प्रदिशः**=चारों दिशाओं में स्थित प्राणियों को **अकल्पयथाः**=शक्तिशाली बनाया (क्लृपू सामर्थ्ये)।

भावार्थ—विस्तृत महत्त्ववाली होने के कारण ही यह पृथिवी 'पृथिवी' है। इसमें चारों ओर उत्तम ऐश्वर्य की स्थिति है। यह चतुर्दिगवस्थित प्राणियों को शक्तिशाली बनाती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'ग्राम, अरण्य, सभा, संग्राम व समिति' में भूमिमाता का यशोगान

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम्।
ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते॥ ५६॥

१. **ये ग्रामाः**=जो ग्राम, **यत् अरण्यम्**=जो जंगल, **याः सभाः**=जो सभाएँ **अधिभूम्याम्**=इस भूमि पर हैं—ये **संग्रामाः**=जो संग्राम व जो **समितयः**=शान्ति-सभाएँ (Peace conferences) इस पृथिवी पर होती हैं, **तेषु**=उनमें **ते चारु वदेम**=तेरे लिए सुन्दर ही वचन कहें। २. जब भी हम एकत्र हों, जहाँ भी एकत्र हों, वहाँ प्रभु से उत्पादित इस पृथिवी के महत्त्व का चर्चण करें। यह चर्चण हमें इस भूमिमाता का स्मरण कराएगा—हमें अनुभव होगा कि हम इस माता के ही तो पुत्र हैं—अतः परस्पर भाई हैं। ऐसा सोचने पर हम द्वेष से दूर व परस्पर प्रेमवाले होंगे।

भावार्थ—हम 'ग्राम, अरण्य, सभा, संग्राम व समितियों' में सर्वत्र भूमिमाता का यशोगान करते हुए परस्पर बन्धुत्व का अनुभव करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पुरोतिजागताजगती**॥

नित्य नव सर्जन

अश्वइव रजो दुधुवे वि ताञ्जनान्य आक्षियन्पृथिवीं यादजायत।
मन्द्राग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम्॥ ५७॥

१. **इव**=जैसे **अश्वः**=घोड़ा **रजः दुधवे**=धूलि को कम्पित करके दूर कर देता है, उसी प्रकार **ये**=जो लोग **पृथिवीं आक्षियन्**=पृथिवी पर समन्तात् बसे हैं, **तान् जनान्**=उन सब मनुष्यों को, **यात् अजायत**=जब से यह पृथिवी हुई है तब से **वि (दुधुवे)**=कम्पित करके दूर करती आयी है। इस पृथिवी पर कोई भी प्राणी स्थिर नहीं है। सभी के ये शरीर नश्वर हैं। २. यह पृथिवी **मन्द्रा**=पुराने को समाप्त करके निरन्तर नये को जन्म देती हुई सचमुच प्रशंसनीय (Praiseworthy) है, **अग्र इत्वरी**=आगे और आगे चलनेवाली है, **भुवनस्य गोपाः**=सब लोकों का—अपने पर होनेवाले प्राणियों का रक्षण करनेवाली है। रक्षण के लिए ही सब **वनस्पतीनाम् ओषधीनां गृभिः**=वनस्पतियों व ओषधियों का अपने में ग्रहण करनेवाली है।

भावार्थ—यह पृथिवी पुराने शरीरों को समाप्त करके नयों को जन्म दे रही है। यह प्रशंसनीय पृथिवी निरन्तर आगे चलती हुई सब प्राणियों की रक्षक है—रक्षण के लिए ही सब वनस्पतियों को अपने में धारण किये हुए है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती**॥

त्विषीमान्—जूतिमान्

यद्वदामि मधुमत्तद्वदामि यदीक्षे तद्वनन्ति मा।
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान्हन्मि दोधतः॥ ५८॥

१. **यत् वदामि**=जो कुछ भी बोलूँ **तत् मधुमत् वदामि**=वह मिठास से भरा हुआ ही बोलूँ। **यत् ईक्षे**=जब देखूँ तो **तत् मा वनन्ति**=लोग मुझे प्रेम (Like, love) ही करते हैं। मेरा बोलना व देखना सब मधुर ही हो। २. मैं **त्विषीमान् अस्मि**=ज्ञान की दीप्तिवाला हूँ, **जूतिमान्**=उत्तम कर्मों में वेगवाला हूँ—उन्हें स्फूर्ति से करनेवाला हूँ। **दोधतः**=(दुध् to kill, injure, hurt) भूमि-माता के पुत्रों का हनन करते हुए **अन्यान्**=शत्रुभूत जनों को **अवहन्मि**=सुदूर विनष्ट करता हूँ।

भावार्थ—हमारा बोलना व देखना प्रेमपूर्ण व मधुर हो। हम दीप्ति व स्फूर्तिवाले बनें। शत्रुभूत जनों को सुदूर विनष्ट करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शान्ति, सुगन्ध, सुख, मधु व पयस्

शन्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोध्नी पयस्वती।
भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह॥ ५९॥

१. **शन्तिवा**=शान्ति-सम्पन्न, **सुरभिः**=उत्तम गन्ध से युक्त, **स्योना**=सुख देनेवाली, **कीला-लोध्नी**=अमृतमय रस को—मधु को गाय की भाँति अपने थनों में (ऊधस्) धारण करनेवाली, **पयस्वती**=क्षीर-सम्पन्न **भूमिः**=प्राणियों का निवास स्थान (भवन्ति भूतानि यस्याम्) यह भूमि हो। २. यह **पृथिवी**=प्रथन-(विस्तार)-वाली भूमि **पयसा सह**=अपने ही आप्यायन (वर्धन) के साधनों के साथ **मे अधिब्रवीतु**=मुझे पुकारे, उसी प्रकार जैसेकि एक माता दूध का गिलास हाथ में लिये हुए एक बच्चे को पुकार रही होती है। यह पृथिवी मुझे भी 'पयस्' प्राप्त कराए।

भावार्थ—यह भूमिमाता हमारे लिए 'शान्ति, सुगन्ध, सुख व पयस्' प्राप्त कराए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'भुजिष्यं पात्रम्'

याम॒न्वैच्छ॑द्ध॒विषा॑ वि॒श्वक॑र्मा॒न्तर॑र्ण॒वे रज॑सि॒ प्रवि॑ष्टाम्।
भु॒जि॒ष्यं॑१ पात्रं॒ निहि॑तं॒ गुहा॒ यदा॒विर्भोगे॑ अभवन्मातृम॒द्भ्यः॥ ६०॥

१. **अर्णवे अन्तः**=महान् प्रभु के अन्दर, **रजसि प्रविष्टाम्**=अन्तरिक्ष में प्रविष्ट (स्थित) **याम्**=जिस पृथिवी को **विश्वकर्मा**=समस्त संसार का निर्माता प्रभु **हविषा**=हवि के हेतु से **अन्वैच्छत्**=चाहता है। प्रभु की कामना से ही सृष्टि होती है '**सोऽकामयत०**'। प्रभु वस्तुतः इस पृथिवी को इसलिए बनाते हैं कि इसपर रहनेवाले मनुष्य इस पृथिवी पर यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हों—इसे 'देवयजनी' बना दें। यह पृथिवी अपने कारणभूत अणुसमुद्र में निहित है—अन्तरिक्ष में यह स्थित है। २. **भुजिष्यं पात्रम्**=भोग्य सन्तानादि से सुसज्जित पात्र के समान यह पृथिवी है। यह पृथिवी **निहितं गुहायाम्**=अपने कारणभूत अणुसमुद्रों की गुफा में निहित है। यह वह पात्र है **यत्**=जोकि **भोगे**=भोग के अवसर आने पर **मातृमद्भ्यः**=पृथिवी को अपनी माता जाननेवाले इन जीवों के लिए **आविः अभवन्**=प्रकट हो जाती है।

भावार्थ—पृथिवी पहले अणुसमुद्र के रूप में अन्तरिक्ष में प्रविष्ट हुई-हुई होती है। प्रभु इसका निर्माण करते हैं, ताकि जीव इसपर यज्ञों को कर सकें। यह पृथिवी एक 'भुजिष्य पात्र' के रूप में हैं। यह पात्र भोग का अवसर आने पर प्रभु के द्वारा प्रकट कर दिया जाता है। जो पृथिवी को माता के रूप में देखते हैं, उन्हें सब आवश्यक पोषण-सामग्री इस भूमिमाता से प्राप्त होती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पुरोबार्हताविष्टुप्**॥

आवपनी—अदितिः

त्वम॑स्या॒वप॑नी॒ जना॑ना॒मदि॑तिः काम॒दुघा॑ पप्रथा॒ना।
यत्त॑ ऊ॒नं तत्त॒ आ पू॑रयाति प्र॒जाप॑तिः प्रथम॒जा ऋ॒तस्य॑॥ ६१॥

१. हे भूमे! **त्वम्**=तू **जनानाम्**=लोगों की—विविध कोनों में उत्पन्न मनुष्यों की **आवपनी असि**=बीज बोने की स्थली है। तू **पप्रथाना**=अत्यन्त विस्तारवाली होती हुई **कामदुघा**=सब कामनाओं का प्रपूरण करनेवाली **अदितिः**=(गोनाम—नि० २.११) गौ ही है। यह पृथिवी सब अन्नों को उत्पन्न करनेवाली है—सब काम्य भोगों का दोहन करनेवाली कामधेनु ही है। २. **यत्**=जो **ते ऊनम्**=तुझमें कमी आती है—अन्नोत्पादन से जो तेरी शक्ति क्षीण होती है **तत् ते**=उस तेरी कमी को वृष्टि व वायुमण्डल की नत्रजन गैस के द्वारा, **ऋतस्य प्रथमजाः**=यज्ञों का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव करनेवाला **प्रजापतिः**=प्रजारक्षक प्रभु **आपूरयाति**=आपूरित कर देता है। यज्ञों के द्वारा वृष्टि होकर पृथिवी की उत्पादन-शक्ति ठीक बनी रहती है।

भावार्थ—यह पृथिवी अन्नों का उत्पादन करनेवाली व सब काम्य पदार्थों को प्राप्त करानेवाली कामधेनु है। प्रभु यज्ञादि की व्यवस्था के द्वारा पृथिवी की शक्ति को पुनः-पुनः स्थिर किये रखते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**पराविराट्निचृत्त्रिष्टुप्**॥

बलिहृतः (स्याम)

उ॒प॒स्थास्ते॑ अनमी॒वा अ॑यक्ष्मा अ॒स्मभ्यं॑ सन्तु पृथिवि॒ प्रसू॑ताः।
दी॒र्घं न॒ आयुः॑ प्रति॒बुध्य॑माना व॒यं तुभ्यं॑ बलि॒हृतः॑ स्याम॥ ६२॥

१. हे **पृथिवि**=भूमिमातः ! **ते उपस्थाः**=तेरी गोद में स्थित होनेवाले गो-दुग्ध आदि पदार्थ तथा **प्रसूताः**=तुझसे उत्पन्न ये वनस्पति **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **अनमीवाः**=रोगों को न पैदा करनेवाले तथा **अयक्ष्माः**=हृद्रोग के जनक **न सन्तु**=न हों। २. **नः**=हमारी **आयुः**=आयु **दीर्घम्**=दीर्घ हो—हम दीर्घजीवी बनें और **प्रतिबुध्यमानाः**=ज्ञान-प्राप्ति द्वारा प्रतिबुद्ध होते हुए—अपने कर्त्तव्य-कर्मों के प्रति जागरूक होते हुए **वयम्**=हम **तुभ्यम्**=हे पृथिवि ! तेरे लिए **बलिहृतः स्याम**=बलि देनेवाले हों। तेरे रक्षण के द्वारा अपने रक्षण के लिए उचित कर आदि देनेवाले हों।

भावार्थ—पृथिवी पर होनेवाले गोदुग्ध, अन्नादि पदार्थ हमारे लिए नीरोगता देनेवाले हों। हम दीर्घ व प्रतिबुद्ध जीवनवाले होते हुए इस भूमिमाता के लिए बलि (कर) देनेवाले हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**भूमिः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

श्री+भूति

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्।
संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्॥ ६३॥

१. हे **भूमे मातः**=मातृवत् हितकारिणि भूमे! तू **मा**=मुझे **भद्रया**=गौ के द्वारा **सुप्रतिष्ठितम् धेहि**=घर में सम्यक् स्थापित कर। गौ के होने पर घर में 'स्वास्थ्य, शान्ति व दीप्ति' बनी रहती है। गोदुग्ध हमें शरीर से स्वस्थ, मन से शान्त तथा मस्तिष्क से ज्ञानदीप्त बनाता है। २. हे **कवे**=प्रशंसनीय (Praise-worthy) मातः ! **दिवा संविदाना**=प्रकाशमय इस द्युलोक से (द्यौष्पिता, पृथिवी माता) संज्ञान-(ऐकमत्य)-वाली होती हुई तू **मा**=मुझे **श्रियाम्**=श्री में तथा **भूत्याम्**=भूति में—ऐश्वर्य में **धेहि**=स्थापित कर। हम श्रीवाले बनें—धनों को प्राप्त करें और भूतिसम्पन्न हों—ऐश्वर्यवाले हों, उन धनों के स्वामी बनकर आनन्द को प्राप्त करें।

भावार्थ—हे भूमिमातः ! मैं तेरे पृष्ठ पर गौ के साथ में सम्यक् प्रतिष्ठित होऊँ। यह पृथिवी माता, पिता द्युलोक के साथ, मुझे श्री और भूति में स्थापित करे। मैं आवश्यक धनों को प्राप्त करके जीवन को आनन्दमय बना पाऊँ।

इस भूमिमाता की गोद में रहता हुआ जो भी व्यक्ति अपना ठीक प्रकार से परिपाक करता है, वह 'भृगु' (भ्रस्ज पाके) बनता है। यही अगले सूक्त का ऋषि है। यह क्रव्याद् अग्नि को (न केवलं क्रव्यात् शवदाहे शवमांसम् अनति अपितु घोरत्वात् यक्ष्मादीन् बहून रोगान् मृत्युं च बहुविधम् आवहति। तथैव नाना प्रकारको भवति—सा०) रोग, आपत्ति व मृत्यु की कारणभूत अग्नि को सम्बोधन करते हुए कहता है कि—

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अधराङ् परेहि

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि।
यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ् परेहि॥ १॥

१. हे क्रव्याद् अग्ने! **नडम् आरोह**=तू नड पर आरोहण कर—नड निर्मित तीखे शर पर तू चढ़—उस शर का तू शिकार हो। **ते अत्र लोकः न**=तेरा यहाँ स्थान नहीं है—तुझे हममें निवास नहीं करना। **इदम्**=इस **ते भागधेयम्**=तेरे भाग्यभूत **सीसम्**=सीसे को—सीसे की बनी घातक गोली को **एहि**=तू प्राप्त हो। यह क्रव्याद् अग्नि, तीर व गोली का शिकार बने—हमें पीड़ित करनेवाला न हो। २. हे क्रव्यात्! **यः गोषु यक्ष्मः**=जो गौवों में रोग है, **पुरुषेषु यक्ष्मः**=पुरुषों

में रोग है, **तेन साकम्**=उस रोग के साथ **त्वम्**=तू **अधराङ्परा इहि**=नीचे की ओर गति करता हुआ दूर चला जा। क्रव्यात् अग्नि का रोगों के साथ नीचे के मार्ग से जाने का भाव यह है कि शरीर में ये मलद्वार अपना कार्य ठीक प्रकार से करते रहें—प्रत्येक रोग में सर्वप्रथम इस शोधन का ही ध्यान करना चाहिए।

भावार्थ—'रोग, आपत्ति व मृत्यु' का कारणभूत क्रव्यात् अग्नि, तीर व गोली का शिकार बने—अर्थात् नष्ट हो। निचले मलद्वारों के मार्ग से सब रोग दूर चले जाएँ। शरीर में मल का संचय हो ही नहीं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अघशंस—दुःशंस, कर-अनुकर व यक्ष्म' का निराकरण

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च। यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि॥ २॥

१. 'अघशंस' वे व्यक्ति हैं जोकि बुराई का शंसन करते हैं (शंस् to praise)। 'दुःशंस' वे हैं जोकि बुरी तरह से विनाश का कारण बनते हैं (शंस् to injure, hurt, kill)। इनके सहायक—इनका 'दाहिना हाथ' बने हुए व्यक्ति 'कर' हैं। इनकी नौकरी करनेवाले 'अनुकर' हैं। **अघशंसदुःशंसाभ्याम्**=अघशंस और दुःशंसों के साथ, **च**=और **करणे अनुकरणे**=इनके हाथ बने हुए सहायकों व भृत्यों के साथ होना **च**=और **सर्वं यक्ष्मम्**=जो सम्पूर्ण रोग है, **तेन**=उसके साथ **मृत्युं च**=मृत्यु को भी **इतः**=यहाँ से **निरजामसि**=बाहर—दूर फेंकते हैं।

भावार्थ—हम अपने 'राष्ट्र, समाज व परिवार' से 'अघशंस व दुःशंस लोगों को, उनके करों व अनुकरों को तथा सब रोगों को' दूर करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

'मृत्यु, ऋति व अराति' का निराकरण

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि।
यो नो द्वेष्टि तमद्धयग्रे अक्रव्याद्यमु द्विष्मस्तमु ते प्र सुवामसि॥ ३॥

१. प्रजापीड़क व्यक्ति 'क्रव्याद् अग्नि' है, तो पीड़कों से रक्षा करनेवाला राजा 'अक्रव्याद् अग्नि' है। राजा से प्रजावर्ग कहता है कि हम **इतः**=यहाँ अपने जीवन से **मृत्युम्**=मृत्यु को—रोगों को **निः अजामसि**=निकालकर दूर करते हैं। **ऋतिम्**=(ऋणोति to kill, attack) औरों पर आक्रमण करने व हिंसन की वृत्ति को **निः**=दूर करते हैं। **अरातिम् निः**=(अजामसि) अदान व कृपणता की वृत्ति को दूर करते हैं। जो व्यक्ति हम सबके प्रति द्वेष करता है **तम्**=उसे आप **अद्धि**=नष्ट (Destroy) कीजिए। **उ**=और **यं द्विष्मः**=जिस एक को हम सब प्रीति नहीं कर पाते **तम्**=उसको **उ**=निश्चय से **ते प्रसुवामसि**=तेरे प्रति प्रेरित करते हैं।

भावार्थ—राष्ट्र में जब राजा 'अक्रव्याद् अग्नि' होता है—प्रजा को प्रजापीड़कों से रक्षित करता है तब प्रजा 'रोग, हिंसा की वृत्ति तथा कृपणता' से दूर होती है और राजा प्रजाद्वेषियों को उचित दण्ड देनेवाला होता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'क्रव्याद् अग्नि व व्याघ्र' का दूरीकरण

यद्यग्निः क्रव्याद्यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः।
तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन्॥ ४॥

१. **यदि**=यदि **क्रव्यात् अग्निः**=प्रजा के मांस को खानेवाला कोई प्रजापीड़क राक्षसीवृत्तिवाला

मनुष्य **वा**=अथवा **अनि ओकाः**=न निश्चित निवास-स्थानवाला कोई **व्याघ्रः**=व्याघ्र—हिंस्र पशु **इमं गोष्ठं प्रविवेश**=इस गोष्ठ में—गौवों के निवास-स्थान में—प्रविष्ट हुआ है तो **तम्**=उसको **माषाज्यं कृत्वा**=(मष् हिंसायाम्, आजि=युद्धसाधनं आज्यम्=शस्त्र। **अज् गतिक्षेपणयोः। वज्रो हि आज्यम्**—श० १.३.२.१७) हिंसक शस्त्र बनाकर **दूरं प्रहिणोमि**=दूर प्रेरित करता हूँ। तीर (नड) व गोली (सीसे) द्वारा उसे दूर भागता हूँ। २. यह 'क्रव्याद् अग्नि व व्याघ्र' **अप्सुषदः**=प्रजाओं में आसीन होनेवाले **अग्नीन्**=राजपुरुषों की **अपि एतु**=ओर प्राप्त होनेवाला हो, अर्थात् राजपुरुष इन क्रव्याद् अग्नियों व व्याघ्रों को प्रजा से दूर रखने की व्यवस्था करें। ये **अप्सर**=(अप् सर Officers) प्रजा में विचरण करते हुए इन क्रव्यादों व व्याघ्रों से प्रजा को पीड़ित न होने दें।

भावार्थ—राजपुरुष दूर दफ्तरों में ही न बैठे रहकर प्रजाओं में विचरण करनेवाले बनें। इसप्रकार वे प्रजा में प्रवेश कर जानेवाले क्रव्याद् अग्नि (राक्षसों) व व्याघ्रों से प्रजा को बचाएँ।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दण्ड का उद्देश्य 'सुधार'

यत्त्वा क्रुद्धाः प्रचक्रुर्मन्युना पुरुषे मृते।
सुकल्पमग्ने तत्त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि॥ ५॥

१. हे **अग्ने**=क्रव्यात् अग्ने—प्रजापीड़क पुरुष! **पुरुषे मृते**=तेरे द्वारा किसी पुरुष के मृत होने पर **मन्युना**=शोक से—दुःख से (मन्युर्शोकौ नु शुक् स्त्रियाम्) **क्रुद्धाः**=क्रुद्ध हुए-हुए व्यक्ति **त्वा प्रचक्रुः**=(प्रकृ Assault, outrage, insult) तुझपर आक्रमण करते हैं या तुझे अपमानित करते हैं, **त्वया तत् सुकल्पम्**=तेरे साथ वह उत्तम ही विधान है (कल्प=A sacred precept, rule)। २. वस्तुतः उचित दण्ड के द्वारा हम **पुनः**=फिर से **त्वा उद्दीपयामसि**=(Illuminate) तुझे प्रबुद्ध करते हैं। यह दण्ड तेरी प्रसुप्त मानव चेतना को जगानेवाला बनता है और तू फिर से क्रव्यात्पन को छोड़कर मानव बनता है—अब तू औरों को पीड़ित न करने का निश्चय करता है।

भावार्थ—जब एक क्रव्यात् (प्रजापीड़क) किसी पुरुष की हत्या का कारण बनता है तब मृत पुरुष के बन्धु व मित्र क्रुद्ध होकर उसपर आक्रमण करते हैं। यह क्रव्यात् के प्रति व्यवहार ठीक ही है। इसका मुख्य उद्देश्य क्रव्यात् की प्रसुप्त चेतना को जागरित करके उसे फिर से मानव बनाना ही होता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिगार्षीपङ्क्तिः**॥

नवजीवन प्रदाता 'तेतीस देव'

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद्दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥ ६॥

१. हे **अग्ने**=प्रगतिशील जीव! **त्वा**=तुझे **पुनः**=फिर से **आदित्याः**=आदित्य **शतशारदाय**=सौ वर्ष तक चलनेवाले **दीर्घायुत्वाय**=दीर्घजीवन के लिए **आधात्**=स्थापित करें। इसी प्रकार **रुद्राः**=रुद्र और **वसवः**=वसु तुझे शतशारद दीर्घायुत्व के लिए स्थापित करनेवाले हों। बारह आदित्य वर्ष के बारह मास हैं, दश प्राण व आत्मा ये ११ रुद्र हैं, 'पञ्चभूत, मन, बुद्धि, अहंकार' वसु हैं। ये सबके सब तेरे दीर्घजीवन का साधन बनें। २. इन ३१ देवों के साथ **वसुनीतिः**=सब वसुओं को निवास के लिए आवश्यक तत्त्वों को प्राप्त करानेवाला **ब्रह्मा**=सृष्टि-निर्माता प्रभु **पुनः**=फिर शतशारद दीर्घायुत्व के लिए स्थापित करे और **ब्रह्मणस्पतिः**=वेदज्ञान का स्वामी प्रभु **पुनः**=फिर **त्वा**=तुझे शतशारद दीर्घायुत्व को प्राप्त कराये।

भावार्थ—'आदित्य, रुद्र, वसु, ब्रह्मा (Creater) तथा ब्रह्मणस्पति (Giver of knowledge)' ये सब हमें फिर से पवित्र जीवनवाला बनाकर सौ वर्ष का दीर्घजीवन प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

मांस भोजन Vs. शाक भोजन

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे॥ ७॥

१. एक घर में जब तक शाकभोजन चलता है तब तक वह घर हव्याद् अग्निवाला होता हे। हव्य पदार्थों का प्रयोग करते हुए ये लोग अपनी बुद्धियों के विकास के द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं, अतः यह 'हव्याद् अग्नि जातवेदस्' नामवाली होती है। **इमं इतरं जातवेदस्**=इस दूसरी जातवेदस् अग्नि को **पश्यन्**=देखती हुई **यः**=जो **क्रव्यात् अग्निः**=मांस भोजनवाली अग्नि **नः गृहम्**=हमारे घरों में **प्रविवेश**=घुस आती है, **तम्**=उसको **दूरं हरामि**=मैं घर से दूर करता हूँ। हम कई बार स्वादवश या मांसभोजन की पौष्टिकता के भ्रमवश मांसभोजन में प्रवृत्त हो जाते हैं, यही 'क्रव्याद् अग्नि' का घर में प्रवेश है। २. इस क्रव्याद् अग्नि के प्रवेश से मानव के स्वभाव में क्रूरता व स्वार्थ का प्राबल्य होता है। तब हम बड़ों के आदर व सेवा को भूल जाते है, अतः इस क्रव्याद् अग्नि को मैं दूर करता हूँ, जिससे **पितृयज्ञाय**=हमारे घरों में पितृयज्ञ ठीक रूप से चलता रहे। **सः**=क्रव्याद् अग्नि को दूर करनेवाला व पितृयज्ञ को ठीक प्रकार से करनेवाला वह शाकभोजी पुरुष **परमे सधस्थे**=इस उत्कृष्ट, आत्मा व परमात्मा के मिलकर बैठने के स्थान हृदय में **घर्मम्**=उस दीप्ति व मलों का क्षरण करनेवाले प्रभु को **इन्धाम्**=दीप्त करे, अर्थात् हृदय में प्रभुदर्शन करनेवाला बने।

भावार्थ—हमारे घरों में मांसभोजन की प्रवृत्ति न हो। हम शाकभोजी रहते हुए स्वार्थ व क्रूरता से दूर रहें। इसप्रकार हमारे घरों में पितृयज्ञ (बड़ों का आदर) सदा चलता रहे और हृदयों में हम प्रभु का दर्शन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'क्रव्याद् अग्नि' 'रोग व दोष' प्रापकता

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥ ८॥

१. **क्रव्यादम् अग्निम्**=मांस खानेवाली अग्नि को **दूरं प्रहिणोमि**=मैं अपने से दूर भेजता हूँ। यह क्रव्याद् अग्नि **यमराज्ञः**=यमराज की है, अर्थात् इस मांसभक्षक अग्नि का सम्बन्ध मृत्यु की देवता से है—यह मांसभोजन मृत्यु का (रोगों का) कारण बनता है, अतः **रिप्रवाहः**=दोषों का वहन करनेवाला यह क्रव्याद् अग्नि **गच्छतु**=हमारे घरों से दूर ही जाए। हमारी प्रवृत्ति मांसभोजन की न हो जाए। २. **अयम्**=यह **इतरः**=मांसभोजन से दूसरा वानस्पतिक भोजनोंवाला **जातवेदाः**=ज्ञान के प्रादुर्भाववाला हव्याद् अग्नि ही **इह**=यहाँ हमारे घरों में हो। यह अग्नि **देवः**=हमारे जीवनों को प्रकाशमय व दिव्यगुणसम्पन्न बनानेवाला है, अतः **प्रजानन्**=एक समझदार पुरुष **देवेभ्यः**=दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए **हव्यं वहतु**=हव्य पदार्थों को ही इस जाठराग्नि में प्राप्त करानेवाला हो।

भावार्थ—मांसभोजन से जीवन रोगों व दोषों से परिपूर्ण बनता है, अतः हम दिव्यगुणों के विकास के लिए हव्य (सात्त्विक, वानस्पतिक) पदार्थों का ही प्रयोग करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुबार्भाविपरीतपादलक्ष्मापङ्क्तिः** ॥

मांस भोजन व मृत्युदृंहण

क्रव्यादमग्निमिषितो हरामि जनान्दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम्।
नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान्पितॄणां लोकेऽपि भागो अस्तु॥ ९॥

१. राजा कहता है कि **इषितः**=प्रजा से प्रेरित किया हुआ मैं **जनान् मृत्युं दृंहन्तम्**=मनुष्यों की मृत्यु को दृढ़ करते हुए, अर्थात् लोगों में रोगों की वृद्धि करते हुए इस **क्रव्याद् अग्निम्**=मांसभक्षक अग्नि को **वज्रेण हरामि**=वज्र से—कठोर दण्ड से दूर करता हूँ। जब राजसभा 'मांसभक्षण-निषेध' का नियम बनाती हैं, तब राजा का कर्त्तव्य है कि कठोर दण्ड द्वारा इस मांसभक्षण की प्रवृत्ति को समाप्त करे। यह मांसभक्षण लोगों में रोगवृद्धि का कारण बनता है। २. राजा कहता है कि **विद्वान्**=मांसभक्षण के दोषों को जानता हुआ मैं **तम्**=उस मांसभक्षक को **निशास्मि**=निश्चित रूप से दण्डित करता हूँ। **गार्हपत्येन**=गार्हपत्य के हेतु से मैं उसे दण्डित करता हूँ। इसलिए मैं उसे दण्डित करता हूँ कि वह उत्तम गृहपति बने। सन्तानों का उत्तम निर्माण करनेवाला हो और **लोके**=इस लोक में **पितॄणां अपि भागः अस्तु**=पितरों का भी उचित सेवन (भज सेवायाम्) हो। वस्तुतः मांसभोजी न तो सन्तानों का उत्तम निर्माण कर पाता है और न ही बड़ों का उचित सम्मान करनेवाला होता है। मांसभोजनवाले गृह में '**स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्**' वाली बात नहीं होती। देव मांसभोजी नहीं, मांस असुरों का भोजन है।

भावार्थ—राजा को चाहिए कि राष्ट्र में मांसभोजन को निषिद्ध रक्खे, जिससे लोग उत्तम गृहपति बनते हुए जहाँ सन्तानों का उत्तम निर्माण करें, वहाँ वृद्ध माता-पिता का भी आदर व सेवा करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पितृयाण+देवयान

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं१ प्र हिणोमि पथिभिः पितृयाणैः।
मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि त्वम्॥ १०॥

१. **क्रव्यादम् अग्निम्**=मांसभक्षक अग्नि को, जोकि **शशमानम्**=(शश् to jump) मर्यादाओं का उल्लंघन करनेवाली है, **उक्थ्यम्**=चाहे वह कितनी भी प्रशंसित हो रही है तो भी, **प्रहिणोमि**=अपने से दूर भेजता हूँ। लोग मांस भोजन की कितनी भी प्रशंसा करें कि 'इससे तो शक्ति बढ़ती है, प्रभु ने इन पशुओं को मनुष्य के लिए ही तो बनाया है, हरिण आदि को न मारा जाएगा तो वे खेतियों को भी तो समाप्त कर डालेंगे' तो भी मैं मांसभोजन में प्रवृत्त नहीं होता। **पितृयाणैः पथिभिः**=पितृयाण-मार्गों पर चलने के हेतु से मैं मांसभोजन से दूर रहता हूँ। मांसभोजन मुझे स्वार्थी व क्रूर बनाकर वृद्ध पितरों की सेवा से भी दूर कर देता है। २. मांसभोजन से दूर रहनेवाले पुरुष से प्रभु कहते हैं कि तू **पुनः**=फिर, गृहस्थ को सुन्दरता से निभाने के बाद, **देवयानैः**=देवयान-मार्गों से चलता हुआ **मा आगाः**=मुझे प्राप्त हो। गृहस्थ कर्त्तव्यों की पूर्ति होने तक **अत्र एव एधि**=यहाँ ही हो, अर्थात् संन्यस्त न होकर घर में ही रह और **त्वम् पितृषु जागृहि**=पितरों में जागरित रह। उनके प्रति अपने कर्त्तव्य में प्रमाद न कर।

भावार्थ—मांसभोजन की कितनी भी प्रशंसा की जाए तो भी हम उसमें प्रवृत्त न हों। हम गृहस्थ में रहते हुए स्वकर्त्तव्य पालन करते हुए पितृयज्ञ को सम्यक्तया पालित करें। गृहस्थ समाप्ति पर देवयान-मार्ग से चलते हुए प्रभु को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'संकसुक' अग्नि का दीपन

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना पुनाति॥ ११॥

१. सद्गृहस्थ लोग **स्वस्तये**=कल्याण की प्राप्ति के लिए **संकसुकम्**=उत्तम (सम्यक्) गति देनेवाले उस ब्रह्माण्ड के शासक (कस गतौ शासने च) प्रभु को **समिन्धते**=अपने हृदयदेश में समिद्ध करते हैं। इसप्रकार वे **शुद्धाः भवन्तः**=शुद्ध होते हुए—अपना शोधन करते हुए **शुचयः**=पवित्र मनोवृत्तिवाले बनते हैं। **पावकाः**=अपने सम्पर्क में आनेवाले को भी पवित्र करते हैं। २. यह हृदयदेश में प्रभु का दर्शन करनेवाला व्यक्ति **रिप्रम् जहाति**=दोष को त्यागता है। **एनः अति एति**=पाप को लाँघ जाता है। **समिद्धः अग्निः**=हृदयदेश में समिद्ध हुआ-हुआ यह अग्रणी प्रभु **सुपुना**=उत्तम पावन क्रिया से **पुनाति**=हमारे जीवनों को पवित्र कर देते हैं।

भावार्थ—जब हम हृदयदेश में प्रभु को समिद्ध करते हैं तब वे प्रभु हमारे जीवनों को पवित्र कर देते हैं। यह प्रभु सम्पर्कवाला व्यक्ति दोषों को त्यागता है—पापों से ऊपर उठता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'देव, अग्नि, संकसुक' प्रभु

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत्।
मुच्यमानो निरेणसोऽमोगस्माँ अशस्त्याः॥ १२॥

१. वे प्रभु **देवः**=सब विघ्नों को जीतनेवाले हैं, **अग्निः**=सब विघ्नों को समाप्त करके हमें आगे ले-चलनेवाले हैं, **संकसुकः**=सारे ब्रह्माण्ड को सम्यक् गति देनेवाले हैं। **दिवः पृष्ठानि आरुहत्**=ज्ञान के शिखरों पर आरोहण किये हुए हैं—सर्वज्ञान-सम्पन्न—ब्रह्मणस्पति हैं। २. ये प्रभु **एनसः**=पास से **निःमुच्यमानः**=पूर्णरूप मुक्त होते हुए—अपापविद्ध होते हुए—**अस्मान्**=हमें भी **अशस्त्याः**=अशस्ति से—अशुभ से **अमोक्**=मुक्त करें।

भावार्थ—प्रभु 'देव हैं, अग्नि हैं, संकसुक हैं'। ज्ञानशिखर पर आरुढ़ हुए-हुए अपापविद्ध हैं। ये प्रभु हमें सब अशुभों से मुक्त करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

यज्ञियाः, शुद्धाः

अस्मिन्वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ १३॥

१. **वयम्**=हम **अस्मिन्**=इस हृदयदेश में समिद्ध किये गये, **संकसुके अग्नौ**=ब्रह्माण्ड को सम्यक् गति देनेवाले अग्रणी प्रभु में **रिप्राणि**=दोषों को **मृज्महे**=धो डालते हैं। प्रभु स्मरण द्वारा जीवन को पवित्र बनाने के लिए यत्नशील होते हैं। २. प्रभुस्मरण द्वारा दोषों का प्रमार्जन करके हम **यज्ञियाः**=यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त, **शुद्धाः**=शुद्ध जीवनवाले **अभूम**=हुए हैं। वे प्रभु **नः**=हमारे **आयूंषि**=जीवनों को **प्रतारिषत्**=खूब दीर्घ करें।

भावार्थ—प्रभुस्मरण द्वारा दोषों का प्रमार्जन करके हम यज्ञिय व शुद्ध बनें और दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'संकसुक, विकसुक, निर्ऋथ, निस्वर'

संकसुको विकसुको निर्ऋथो यश्च निस्वरः।
ते ते यक्ष्मं सवेदसो दूराद्दूरमनीनशन्॥ १४॥

१. **संकसुकः**=वे प्रभु सारे ब्रह्माण्ड का सम्यक् शासन करनेवाले हैं। **विकसुकः**=विविधरूपों में लोक-लोकान्तरों को गति देनेवाले हैं। **निर्ऋथः**=पीड़ा का सर्वथा नाश करनेवाले हैं **च**=और प्रभु वे हैं **यः**=जो **निस्वरः**=उपताप से रहित हैं—अपने उपासकों से उपताप को दूर करनेवाले हैं। २. प्रभु का उपर्युक्त रूपों में स्मरण करते हुए और स्वयं भी वैसा बनते हुए **ते**=वे **सवेदसः**=ज्ञानी पुरुष (ज्ञान के साथ रहनेवाले पुरुष) **ते यक्ष्मम्**=तेरे राजरोग को **दूरात् दूरम्**=दूर-से-दूर **अनीनशन्**=नष्ट करें। प्रस्तुत मन्त्र में ब्राह्मण 'संकसुक' है—अपना सम्यक् शासन करनेवाला। क्षत्रिय 'विकसुक' है—राज्य के सब कार्यों को चलानेवाला—सब विभागों को गति देनेवाला। वैश्य 'निर्ऋथ' है—अन्नादि का सम्यक् उत्पादन करता हुआ यह प्रजा को पीड़ा से बचाता है। शूद्र 'निस्वर' है—बोलता कम है। शोधन आदि द्वारा उपताप को दूर करता है। ये सब अपना-अपना कार्य करते हुए, संज्ञान द्वारा राष्ट्र को रोगों से मुक्त रखते हैं।

भावार्थ—प्रभु को 'शासक—गति देनेवाले, पीड़ा व उपताप से दूर ले-जानेवाले' रूप में देखते हुए ज्ञानी पुरुष हमारे रोगों को सुदूर विनष्ट करें। राष्ट्र का उत्तम शासन करते हुए ये लोग राष्ट्र को रोगों से बचाएँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'जनयोपन' अग्नि को दूर करना

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु।
क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः॥ १५॥

१. **यः**=जो भी **नः**=हमारे **अश्वेषु**=अश्वों के विषय में, **वीरेषु**=वीर सन्तानों के विषय में और **यः**=जो **नः**=हमारी **गोषु**=गौवों में, **अजाविषु**=बकरियों व भेड़ों में पीड़ा पहुँचानेवाला मांसभक्षी पुरुष है उस **क्रव्यादम्**=मांसाहारी को **निर्णुदामसि**=सुदूर धकेल देते हैं। २. **यः**=जो भी **अग्निः**=अग्नि की भाँति सन्ताप पहुँचानेवाला व्यक्ति **जनयोपनः**=लोगों को विमूढ़ बनानेवाला है—उसको हम दूर करते हैं।

भावार्थ—जो भी मांसाहारी सन्तापक पुरुष घोड़ों, गौवों, भेड़-बकरियों व वीरों को पीड़ित करता है, उसका दूर करना आवश्यक है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**ककुम्मतीपराबृहत्यनुष्टुप्** ॥

सर्वहित के लिए क्रव्याद् का निर्णोदन

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा।
निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः॥ १६॥

१. हम **त्वा**=तुझ 'क्रव्याद् अग्नि' को—मांसभक्षक सन्तापक पुरुष को **अन्येभ्यः पुरुषेभ्यः**=अन्य पुरुषों के हित के लिए भी **निःनुदामसि**=दूर प्रेरित करते हैं। **गोभ्यः अश्वेभ्यः**=गौवों व घोड़ों के हित के लिए भी **त्वा**=तुझे दूर प्रेरित करते हैं। २. उस तुझको हम दूर प्रेरित करते हैं, **यः**=जो तू **जीवितयोपनः**=(योपयति destroy, blot out, obliterate) जीवन को नष्ट करनेवाला **अग्निः**=अग्निवत् सन्तापक है।

भावार्थ—सबके हित के लिए मांसभक्षक, अग्निवत् सन्तापक, जीवन के विनाशक पुरुष को दूर करना ही चाहिए।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

घृतस्ताव का द्युलोक में आरोहण

यस्मिन्देवा अमृजत यस्मिन्मनुष्या उत।
तस्मिन्घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह॥ १७॥

१. **यस्मिन्**=जिस प्रभु में **देवाः अमृजत**=देववृत्ति के पुरुष अपना शोधन करते हैं, **उत**=और **यस्मिन्**=जिस प्रभु में **मनुष्याः**=मननशील पुरुष भी—विचारपूर्वक कर्म करनेवाले मनुष्य भी अपना शोधन करते हैं, **तस्मिन्**=उस प्रभु में ही हे **घृतस्तावः**=उस ज्ञानदीप्त (घृ दीप्तौ) निर्मल (घृ क्षरणे) प्रभु का स्तवन करनेवाले **अग्ने**=अग्रणी—अपने को आगे और आगे ले-चलनेवाले पुरुष! **त्वम्**=तू **मृष्ट्वा**=अपना शोधन करके **दिवं रुह**=प्रकाशमय मोक्षलोक में आरोहण कर।

भावार्थ—प्रभु का उपासन करनेवाले पुरुष आत्मजीवन का शोधन करते हुए मोक्षलोक में आरोहण करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**निचृदनुष्टुप्** ॥

मा अपक्रमीः

समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः। अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक्च सूर्यं दृशे॥ १८॥

१. हे **आहुत**=(आ हुतं यस्य) समन्तात् विविध दानोंवाले **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **समिद्धः**=आप हमारे द्वारा हृदयदेश में समिद्ध किये गये हो। **सः**=वे आप **नः**=हमसे **मा अभि अपक्रमीः**=दूर न होओ। हम आपसे कभी पृथक् न हों। २. **अत्र एव**=यहाँ हमारे हृदयों में ही **द्यवि दीदिहि**=अपने प्रकाशमयरूप में प्रदीप्त होओ। हम हृदयों में आपके प्रकाश को सदा देखें। **च**=और **ज्योक्**=दीर्घकाल तक **सूर्यं दृशे**=सूर्य के दर्शन के लिए हों, अर्थात् दीर्घजीवी बनें।

भावार्थ—हम हृदयों में सदा प्रभु के प्रकाश को देखें, प्रभु से कभी दूर न हों और इस प्रकार दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'सीस व नड' प्रभु का स्मरण

सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वमग्नौ संकसुके च यत्।
अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे॥ १९॥

१. 'किस प्रकार मनुष्य संसार में आता है, कुछ बड़ा होता है, शिक्षणालय को पूरा करके गृहस्थ में प्रवेश करता है, कुछ फूलता-फलता है, जिम्मेदारियों को समाप्त करके जाने की तैयारी करता है' यह सब-कुछ सोचने पर यह संसार एक शिरोवेदना के समान ही प्रतीत होता है—झंझट-ही-झंझट-सा लगता है। मन्त्र में कहते हैं कि **यत्**=इस **शीर्षक्तिम्**=शिरोवेदना को **सीसे मृड्ढ्वम्**=उस (षिञ् बन्धने, ई गतौ 'ईयते', स्यति 'षोऽन्तकर्मणि') संसार को बाँधनेवाले, उसे गति देनेवाले व उसका अन्त करनेवाले 'उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय' हेतु प्रभु में शोध डालो—प्रभु स्मरण द्वारा सिरदर्दी को दूर कर डालो। प्रभु-स्मरण होने पर संसार-यात्रा सुखेन पूर्ण हो जाती है। **नडे मृड्ढ्वम्**=(नड गहने) उस गहन (Incomprehensible) अचिन्त्य प्रभु से इसे शोध डालो। इससे उस 'नड' प्रभु में विलीन हुआ-हुआ मन परेशान नहीं होता। **च**=और उस **संकसुके अग्नौ**=सम्यक् शासन करनेवाले—सम्यक गति देनेवाले अग्रणी प्रभु में इस सिरदर्द को

शोध डालो। प्रभु-स्मरण उस शान्ति व शक्ति को देगा, जिससे यह यात्रा ठीक प्रकार से पूर्ण हो जाएगी। २. **अथो**=और **रामायां अव्याम्**=सर्वत्र रमण करनेवाले (अव रक्षणे) सर्वरक्षक प्रभु में इस शिरोवेदना का अन्त कर डालो। प्रभुचिन्तन संसार को सुखद बना देगा। अन्त में **उपबर्हणे**=उस उपासकों की वृद्धि के कारणभूत ब्रह्म में (बृहि वृद्धौ) इस वेदना का अन्त कर डालो।

भावार्थ—हम प्रभु का स्मरण करें कि वे संसार की 'उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय' का हेतु हैं। अचिन्त्य हैं, शासक व गति देनेवाले हैं, सर्वरक्षक व सर्वत्र रमण करनेवाले हैं। वे प्रभु उपासकों की वृद्धि के कारणभूत हैं। इस प्रकार प्रभु का स्मरण होने पर यह संसार हमारे लिए सिरदर्द न बनेगा।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शुद्धाः यज्ञियाः

सीसे॒ मलं॑ सादयि॒त्वा शी॑र्ष॒क्तिमु॑प॒बर्ह॑णे।
अव्या॒मसि॑क्न्यां मृ॒ष्टवा शु॒द्धा भ॑वत य॒ज्ञिया॑ः॥ २०॥

१. **सीसे**=(षिञ् बन्धने, ई गतौ, षोऽतकर्मणि) संसार की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय के हेतुभूत ब्रह्म में **मलम्**=मन की सब मैल को **सादयित्वा**=नष्ट करके तथा **उपबर्हणे**=उपासकों की वृद्धि के कारणभूत ब्रह्म में **शीर्षक्तिम्**=सब सिरदर्दी को समाप्त करके, **अव्याम्**=उस सर्वरक्षक **असिक्न्याम्**=अजर (जरा से पलित न होनेवाले) प्रभु में **मृष्ट्वा**=अपने को शुद्ध बनाकर **शुद्धाः**=पवित्र व **यज्ञियाः**=यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त **भवत**=हो जाओ।

भावार्थ—प्रभु का उपासन हमारे मन की मैल को नष्ट करता है। इस उपासना से संसार हमारे लिए सिरदर्द नहीं बना रहता। उस सर्वरक्षक, अजरामर प्रभु का चिन्तन हमें शुद्ध व पवित्र बना देता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**मृत्युः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

मृत्यु का मार्ग (देवयान से दूर)

परं॑ मृत्यो॒ अनु॒ परे॑हि॒ पन्था॒ यस्ते॑ इत॑रो देव॒याना॑त्।
चक्षु॑ष्मते शृण्व॒ते ते॑ ब्रवीमी॒हेमे वी॒रा ब॒हवो॑ भवन्तु॥ २१॥

१. शुद्ध-पवित्र बनकर हम मृत्यु से कह सकते हैं कि **मृत्यो**=हे मृत्युदेवते! तू **परं पन्थाम्**=सुदूर मार्ग को **अनु**=लक्ष्य करके **परेहि**=हमसे दूर चली जा। उस मार्ग पर जा **यः**=जो **एषः**=यह **ते**=तेरा है। **देवयानात् इतरः**=जो मार्ग देवयान से भिन्न है। देवों का मार्ग देने का है, 'देवो दानात्'। असुरों का मार्ग खाने का है 'स्वेष्वास्येषु जह्वतश्चेरुः'। २. हे मृत्यो! **चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि**=देखती व सुनती तेरे लिए मैं यह कहता हूँ कि **इह**=यहाँ हमारे घर में **इमे वीराः**=ये वीर सन्तान **बहवः भवन्तु**=(बृहते, बृहि वृद्धौ) वृद्धिशील हों। शरीर, मन व बुद्धि के दृष्टिकोण से ये उन्नति करनेवाले हों।

भावार्थ—हम देवयान मार्ग से गति करते हुए मृत्यु से बचे रहें—हमारे सन्तान भी 'शरीर, मन व बुद्धि' के दृष्टिकोण से वृद्धि प्राप्त करें।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**मृत्युः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

भद्रा देवहूतिः

इ॒मे जी॒वा वि मृ॒तैराव॑वृत्र॒न्नभू॒द्भद्रा दे॒वहू॑तिर्नो अ॒द्य।
प्राञ्चो॑ अगाम नृ॒तये॒ हसा॑य सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा व॑देम॥ २२॥

१. **इमे**=घर में रहनेवाले ये व्यक्ति **जीवाः**=जीवित हों—मुर्दे-से न हों। ये **मृतैः वि आववृत्रन्**=मृत्युओं (रोगों) से पृथक् हों। ये रोगाक्रान्त होकर असमय में ही चले न जाएँ। **नः**=हमारे लिए **अद्य**=आज **देवहूतिः**=देवों का आह्वान, अर्थात् देववृत्ति के लोगों का अतिथिरूपेण घर पर आना-जाना **भद्रा अभूत्**=कल्याणकर हो। २. उनसे प्रेरणा लेकर **प्राञ्चः अगाम**=हम आगे और आगे बढ़नेवाले हों। **नृतये हसाय**=नाचते व हँसते हुए हम आगे बढ़ते चलें। हम **सुवीरासः**=उत्तम वीर बनते हुए **विदथम् आवदेम**=ज्ञान का ही चर्चण करें। हमारा समय ज्ञान की चर्चाओं में ही उपयुक्त हो।

भावार्थ—हम रोगों से बचकर जीवनशक्ति से परिपूर्ण हों। विद्वानों के सम्पर्क में, उत्तम प्रेरणा को प्राप्त करके आगे बढ़ते चलें। प्रसन्नता से व वीरतापूर्ण जीवन से युक्त होकर हम ज्ञान की ही चर्चा करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

'मर्यादित—पुरुषार्थमय' दीर्घजीवन

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन॥ २३॥

१. **जीवेभ्यः**=जीवों के लिए **इमं परिधिं दधामि**=इस मर्यादा की स्थापना करता हूँ। जीव प्रत्येक कार्य को मर्यादा में करनेवाले हों। अति को छोड़कर सब कार्यों में मध्यमार्ग का अवलम्बन करें। २. **नु**=निश्चय से **एषाम्**=इनके **एतं अर्थम्**=इस धन को **अपरः मा गात्**=दूसरा प्राप्त न हो। सब अपने पुरुषार्थ से धर्नाजन करनेवाले हों। दूसरे से धन लेने की कामना ही न करें। अपने पुरुषार्थ से खानेवाले ही 'उत्तम' हैं, पिता से लेकर खानेवाले 'मध्यम', मामा का खानेवाले 'अधम' व श्वसुर पर आश्रित होनेवाले 'अधमाधम' हैं। ३. सब जीव **शतं शरदः जीवन्तः**=सौ वर्ष तक जीएँ। जीएँ भी **पुरूचीः**=अत्यन्त गतिशील होते हुए। अकर्मण्य होकर खाट पर लेटे-लेटे जीना कोई जीना नहीं है। ४. **पर्वतेन**=(पर्व पूरणे) निरन्तर अपने पूरण के द्वारा—कमियों को दूर करते रहने के द्वारा **मृत्युं तिरः दधताम्**=मृत्यु को अपने से तिरोहित ही रक्खें। प्रतिदिन का यह पूरण मृत्यु को हमारे समीप न आने दे।

भावार्थ—[हम मर्यादा में चलें। पुरुषार्थ से धन कमाएँ। सौ वर्ष तक जीएँ और मृत्यु को अपने से दूर ही रक्खें। —सम्पा०]

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अनुपूर्व यतमानाः

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ।
तान्वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु जीवनाय॥ २४॥

१. **यति स्थ**=इस घर में जितने भी आप सब हों वे **अनुपूर्वं यतमानाः**=क्रमशः गृह की स्थिति को उत्तम बनाने के लिए प्रयत्न करते हुए **आयुः आरोहत**=जीवन में आगे और आगे बढ़ो। **जरसं वृणानाः**=आप जरावस्था का वरण करनेवाले बनो। यौवन में ही आपका जीवन समाप्त न हो जाए। पिता के बाद पुत्र आता है। पिता ने जैसे घर को अच्छा बनाने का यत्न किया था, उसी प्रकार पुत्र गृहस्थिति को और अधिक उन्नत करने के लिए यत्नशील होता है। इस प्रकार अनुपूर्व यत्न करते हुए सब पूर्ण जरावस्था तक जीनेवाले बनते हैं। पुत्र कभी पिता से पहले चला नहीं जाता। २. **तान् वः**=उन गृह में रहनेवाले आप सबको **त्वष्टा**=संसार का

निर्माता प्रभु **सुजनिमा**=उत्तम जन्मों को देनेवाला व **सजोषाः**=सदा हृदयों में हमारे साथ प्रीतिपूर्वक स्थित होनेवाला **जीवनाय**=उत्कृष्ट दीर्घजीवन के लिए **सर्वम् आयुः जयतु**=पूर्ण जीवन को प्राप्त कराए।

भावार्थ—हम अपने घरों में सदा उत्तम स्थिति के लिए प्रयत्न करते हुए, आगे बढ़ें। प्रभु से संगत हुए-हुए जीवन को उत्तम बनाएँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अविच्छिन्न पूर्ण जीवन

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तवं ऋतुभिर्यन्ति साकम्।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्॥ २५॥

१. **यथा**=जिस प्रकार **अहानि**=दिन **अनुपूर्वं भवन्ति**=अनुक्रम से आते रहते हैं—एक दिन के बाद दूसरा दिन आ जाता है और उससे लगा हुआ तीसरा दिन और इस प्रकार यह दिनों का क्रम चलता है, **धातः**=हे सबका धारण करनेवाले प्रभो! **एवा**=इसी प्रकार **एषाम्**=इन तपस्वी (भृगु) पुरुषों के **आयूंषि कल्पय**=जीवनों को बनाइए। **यथा**=जैसे **ऋतवः**=ऋतुएँ **ऋतुभिः साकं यन्ति**=ऋतुओं के साथ गतिवाली होती है, जैसे इन ऋतुओं का क्रम अविच्छिन्नरूप से चलता जाता है, इसीप्रकार इन भृगुओं के जीवन में भी 'ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास' का क्रम अविच्छिन्न रूप से पूर्ण हो। २. **यथा**=जैसे **पूर्वम्**=पूर्वकाल में उत्पन्न हुए-हुए पिता को **अपरः न जहाति**=अर्वाक् काल में होनेवाला सन्तान नहीं छोड़ता है, अर्थात् पिता से पूर्व ही जीवन को समाप्त करके चला नहीं जाता, इस प्रकार हे प्रभो! इन स्वभक्तों के जीवनों को भी बनाइए। कोई भी व्यक्ति शत वर्ष से पूर्व ही जानेवाला न हो जाए।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से हमारी जीवन-यात्रा मध्य में ही विच्छिन्न न हो जाए। पुत्र पिता से पूर्व कभी न चला जाए।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अश्मन्वती नदी

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीत ये असन्दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान्॥ २६॥

१. यह संसार नदी **अश्मन्वती**=पत्थरोंवाली है—इसमें तैरना सुगम नहीं। विविध प्रलोभन ही इसमें पत्थरों के समान हैं। **रीयते**=यह निरन्तर चल रही है—संसार में रुकने का काम नहीं। **संरभध्वम्**=एक-दूसरे के साथ मिलकर तैयार हो जाओ। **वीरयध्वम्**=वीरतापूर्वक आचरण करो। **सखायः प्रतरत**=मित्र बनकर एक-दूसरे का हाथ पकड़कर, इस नदी को तैर जाओ। २. **ये दुरेवाः असन्**=जो भी दुराचरण हों, उन्हें **अत्रा जहीत**=यहाँ ही छोड़ जाओ। उनके बोझ को लादकर तैरना सुगम न होगा। इन अशुभों को छोड़कर **अनमीवान्**=रोगरहित **वाजान् अभि**=शक्तियों को लक्ष्य बनाकर **उत्तरेम**=इस नदी को तैर जाएँ।

भावार्थ—प्रलोभन-पाषाणों से परिपूर्ण इस भव-नदी को तैरना आसान नहीं। यहाँ साथी बनकर वीरता से हम इस नदी को पार करने का संकल्प करें। अशुभों को यहीं छोड़कर नीरोगता देनेवाली शक्तियों को लेकर हम परले पार उतरें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अशिव-त्याग व शिव-प्राप्ति

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान्॥ २७॥

१. हे **सखायः**=मित्रो! **उत्तिष्ठत**=उठो—आलस्य को छोड़ो। **प्रतरत**=इस नदी को तैरने के लिए यत्नशील होओ। **इयम्**=यह **अश्मन्वती**=पथरीली—प्रलोभन-पाषाणों से परिपूर्ण **नदी**=संसाररूप नदी **स्यन्दते**=बह रही है। २. **ये अशिवाः असन्**=जो भी अकल्याणकर पदार्थ हों, **अत्रा जहीत**=उन्हें यहाँ ही छोड़ जाओ। **स्योनान्**=सुखकर **शिवान्**=कल्याण के साधक **वाजान् अभि**=बलों का लक्ष्य करके **उत्तरेम**=हम नदी को पार कर जाएँ। अशुभ कर्मों का बोझ हमें इस नदी में डुबोएगा ही—परस्पर लड़ते हुए भी हम इस नदी में डूबेंगे ही, अतः सखा बनकर तथा अशिवों को छोड़कर हम इस नदी को तैरने का प्रयत्न करें।

भावार्थ—इस संसार-नदी को तैरने के लिए आवश्यक है कि (क) आलस्य को छोड़ा जाए (ख) मित्रभाव से सबके साथ वर्ता जाए (ग) अशुभों को छोड़ने का प्रयत्न किया जाए।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वैश्वदेवी 'वेदवाणी'

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः पावकाः।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम॥ २८॥

१. हे मनुष्यो! **वैश्वदेवीम्**=सब दिव्यगुणों की जननी इस वेदवाणी को **वर्चसे**=तेजस्विता की प्राप्ति के लिए **आरभध्वम्**=प्रारम्भ करो। इस वेदवाणी का अध्ययन तुम्हें सब बुराइयों से बचाकर अच्छाइयों की ओर ले-चलेगा। उस समय तुम **शुद्धाः भवन्तः**=मलों से रहित होते हुए, **शुचयः**=अर्थ के दृष्टिकोण से पवित्र बनोगे और **पावकाः**=अपने मनों को पूर्ण पवित्र बना पाओगे। २. तुम्हारी यही कामना हो कि **दुरिता पदानि**=सब दुराचरण के मार्गों को **अतिक्रामन्तः**=उल्लंघन करते हुए, **सर्ववीराः**=सब वीर सन्तानोंवाले होते हुए हम **शतं हिमाः मदेम**=सौ वर्ष तक आनन्द का अनुभव करें।

भावार्थ—वेदवाणी का अध्ययन हमें तेजस्वी बनाएगा, शुद्ध, शुचि व पवित्र करेगा। उस समय हम दुरितों से दूर रहकर, वीर बनते हुए शतवर्षपर्यन्त उल्लासमय जीवनवाले होंगे।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**मृत्युः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वायुमद्भिः उदीचीनैः

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोऽवरान्परेभिः।
त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन्पदयोपनेन॥ २९॥

१. **उदीचीनैः**=उत्कर्ष की ओर ले-जानेवाले (उद् अञ्च), **वायुमद्भिः**=प्राणसाधना से युक्त, जिनमें प्राणायाम आदि का अभ्यास किया जाता है, हम उन **परेभिः पथिभिः**=उत्कृष्ट मार्गों से **अवरान्**=निम्न भोगमार्गों—राजस् व तामस् मार्गों को **अतिक्रामन्तः**=लाँघकर आगे बढ़ते हुए हों। प्राणसाधना के द्वारा हम तमोगुण व रजोगुण से ऊपर उठकर स्वस्थ बनें। २. इसप्रकार **ऋषयः**=वासनाओं का संहार करनेवाले (ऋष् to kill) **त्रिः सप्तकृत्वः**=तीन बार 'मन, वाणी व कर्म' के दृष्टिकोण से तथा सात बार 'दो कानों, दो नासिका छिद्रों, दो आँखों व मुख' के दृष्टिकोण से **परेताः**=(परा इताः) उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त हुए। 'मन, वाणी व कर्म' के दृष्टिकोण

से तथा कान आदि सातों होताओं के दृष्टिकोण से पवित्र बनें। इन्होंने **पदोपनेन मृत्युं प्रत्यौहन्**=मृत्यु के चरणों को विमोहन (to destroy, obliterate, blot out) द्वारा—रोगों के कारणों को दूर करने के द्वारा मृत्यु को अपने से परे विनष्ट किया (उहिर् वधे)।

भावार्थ—हम प्राणसाधना करते हुए उत्कृष्ट मार्ग पर चलें। मन, वाणी व कर्म के दृष्टिकोण से तथा सातों 'कर्णौ, नासिके, चक्षुषी, मुखम्' के दृष्टिकोण से पवित्र बनते हुए उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त हों। मृत्यु के कारणों को दूर करते हुए दीर्घजीवी बनें।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**मृत्युः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सधस्थे आसीनाः

मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेऽथ जीवासो विदथमा वदेम॥ ३०॥

१. **मृत्योः पदम्**=मृत्यु के पद को—रोगों के कारणों को **योपयन्तः**=मिटाते हुए **एत**=(आ-इत) समन्तात् कर्त्तव्य-कर्मों में गतिशील होओ। इसप्रकार **द्राघीयः**=दीर्घ व **प्रतरम्**=उत्कृष्ट **आयुः दधानाः**=जीवन को धारण करते हुए होओ। २. **सधस्थे**=प्रभु के साथ मिलकर बैठने के स्थान हृदय में **आसीनाः**=बैठे हुए, अर्थात् हृदय में प्रभु का ध्यान करते हुए **मृत्युं नुदत**=मृत्यु को परे धकेल दो। **अथ**=अब **जीवासः**=जीवनीशक्ति से परिपूर्ण हुए-हुए हम **विदथम् आवदेम**=समन्तात् ज्ञान का प्रवचन करें।

भावार्थ—मृत्यु के कारणों को दूर करते हुए हम दीर्घ, उत्कृष्ट जीवन को धारण करें। हृदय में प्रभु का ध्यान करते हुए मृत्यु को दूर करें। जीवनशक्ति से परिपूर्ण होते हुए हम ज्ञान का प्रवचन करें।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**मृत्युः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पत्नी

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्।
अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥ ३१॥

१. **इमाः नारीः**=ये स्त्रियाँ **अविधवाः**=विधवा न हों—पतियों से वियुक्त न हों। **सुपत्नी**=उत्तम पतियोंवाली होती हुई **आञ्जनेन**=(अञ्जनं Fire) अग्निहोत्र के साधनभूत **सर्पिषा संस्पृशन्ताम्**=घृत से युक्त हों। सदा घृत से अग्निहोत्र करनेवाली हों। २. **अनश्रवः**=ये आसुओं से रहित हों। **अनमीवाः**=रोगरहित हों। **सुरत्नाः**=उत्तम रमणीय धनोंवाली हों। ये **जनयः**=उत्तम सन्तानों को जन्म देनेवाली देवियाँ **योनिम् अग्रे आरोहन्तु**=घर में आगे आरोहण करें—अर्थात् घरों में आदरणीय स्थानों में आरूढ़ हों।

भावार्थ—पत्नी की स्थिति जितनी उत्कृष्ट होगी, उतना ही घर उत्तम बनेगा। ये कष्ट में न हों, नीरोग हों, रमणीय धनोंवाली हों। अग्निहोत्र करनेवाली हों।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**मृत्युः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि॥ ३२॥

१. प्रभु कहते हैं कि **अहम्**=मैं **एतौ**=इन दोनों पति-पत्नी को **हविषा**=हवि के द्वारा—दानपूर्वक अदन के द्वारा—यज्ञशेष के सेवन के द्वारा **व्याकरोमि**=(वि आ कृ) विशिष्टरूप से

समन्तात् निर्मित करता हूँ, अर्थात् अग्निहोत्र की प्रवृत्ति के द्वारा—सदा यज्ञशेष (अमृत) के सेवन से इनके सब अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुपुष्ट होते हैं। **तौ**=उन दोनों पति-पत्नी को **अहम्**=मैं **ब्रह्मणा**=ज्ञान के द्वारा **विकल्पयामि**=विशिष्ट सामर्थ्यवाला बनता हूँ। (क्लृप् सामर्थ्ये)। ज्ञान की प्रवृत्ति इन्हें, विलासवृत्ति से ऊपर उठाकर शक्तिसम्पन्न करती है। २. इनके घर में **पितृभ्यः**=वृद्ध माता-पिता के लिए **स्वधाम्**=स्वधा को—पितरों के लिए दीयमान अन्न को (पितृभ्यः स्वधा) **अजरां कृणोमि**=न जीर्ण होनेवाला करता हूँ। इनके यहाँ वृद्ध माता-पिता को सदा उत्तम भोजन प्राप्त रहता है। इसप्रकार ये पति-पत्नी देवयज्ञ (हविषा), ब्रह्मयज्ञ (ब्रह्मणा) तथा पितृयज्ञ (पितृभ्यः स्वधा) को नियम से करते हैं। इसप्रकार **इमान्**=इस घर में रहनेवाले इन सब लोगों को **दीर्घेण आयुषा**=दीर्घजीवन से **संसृजामि**=संसृष्ट करता हूँ—ये सब इन यज्ञों के कारण दीर्घजीवी बनते हैं।

भावार्थ—हवि के द्वारा हम अङ्ग-प्रत्यङ्ग को पुष्ट करनेवाले बनें। ज्ञान के द्वारा हम विशिष्ट सामर्थ्यवाले हों। पितृयज्ञ को कभी विस्मृत न करें। यही दीर्घजीवन की प्राप्ति का मार्ग है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**मृत्युः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु की प्रीति

यो नो॑ अ॒ग्निः पि॑तरो हृ॒त्स्व१॒॑न्तरा॑वि॒वेशा॒मृतो॒ मर्त्ये॑षु।
मय्य॒हं तं परि॑ गृह्णामि दे॒वं मा सो अ॒स्मान्द्वि॑क्षत॒ मा व॒यं तम्॥ ३३॥

१. हे **पितरः**=ज्ञान के द्वारा हमारा रक्षण करनेवाले पितरो! **यः**=जो **नः मर्त्येषु**=हम मरणधर्मा पुरुषों के **हृत्सु अन्तः**=हृदयों के अन्दर **अमृतः अग्निः**=अविनाशी अग्रणी प्रभु **आविवेश**=प्रविष्ट हुए-हुए हैं, **अहम्**=मैं **तं देवम्**=उस प्रकाशमय प्रभु को **मयि परिगृह्णामि**=अपने अन्दर ग्रहण करता हूँ। उस प्रभु को अपने हृदय में देखने के लिए यत्नशील होता हूँ। २. **सः**=वह प्रभु **अस्मान् मा द्विक्षत**=हमारे प्रति अप्रीतिवाला न हो—**वयम्**=हम **तम्**=उस प्रभु को **मा**=अप्रीति करनेवाले न हों। हमें प्रभु की उपासना प्रिय हो और इस प्रकार हम प्रभु के प्रिय बनें।

भावार्थ—पितरों की कृपा से हम हृदयों में प्रभु को देखनेवाले बनें। सदा प्रभु के उपासक हों और प्रभु के प्रिय बनें।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सरलता व उदारता

अ॒पा॒वृत्य॒ गार्ह॑पत्यात्क्रव्या॒दा प्रेत॑ दक्षि॒णा।
प्रि॒यं पि॒तृभ्य॑ आ॒त्मने॑ ब्र॒ह्मभ्य॑: कृणुता प्रि॒यम्॥ ३४॥

१. **क्रव्यादा अपावृत्य**=(क्रव्य अद्) मांसभक्षण की प्रवृत्ति से हटकर—कभी मांस-सेवन न करते हुए—**गार्हपत्यात्**=गार्हपत्य के हेतु से, अर्थात् घर को उत्तम बनाने के हेतु से, **दक्षिणा प्रेत**=(दक्षिणे सरलोदारौ) सरल व उदार मार्ग से चलो। सरलता व उदारता ही घर को उत्तम बनाएगी, कुटिलता व कृपणता घरों के पतन का हेतु बनती हैं। २. यहाँ तक घर में रहते हुए तुम **पितृभ्यः प्रियं कृणुत**=पितरों के लिए प्रिय कर्म ही करो। **आत्मने**=जो तुम्हें प्रिय लगता हो—वैसा ही दूसरों के साथ करो। **ब्रह्मभ्यः प्रियं (कृणुत)**=ब्रह्मज्ञानियों के लिए जो प्रिय हो वैसा ही करो। पितरों के लिए प्रिय करना ही 'पितृयज्ञ' है। ब्रह्मज्ञानियों का प्रिय करना 'ब्रह्मयज्ञ' व 'अतिथियज्ञ' है। पितृयज्ञ व ब्रह्मयज्ञ करनेवाला यह व्यक्ति औरों के साथ वैसा ही वर्तता है, जैसाकि वह औरों से बर्ताव की अपेक्षा करता है।

भावार्थ—मांसभक्षण हमें सरलता व उदारता से दूर ले-जाता है और परिणामतः घर को

छिन्न-भिन्न कर देता है। हम पितरों के लिए, ब्रह्मज्ञानियों के लिए प्रिय कार्यों को करते हुए औरों के साथ वैसा ही बरतें जैसाकि हम उनसे अपने प्रति बतार्व चाहते हैं।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मांसभक्षण का परिणाम

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या।
अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः॥ ३५॥

१. **यः**=जो **क्रव्यात् अग्निः**=मांसभक्षक अग्नि **अनिराहितः**=बाहर स्थापित नहीं किया जाता, अर्थात् यदि हममें मांसभक्षण की प्रवृत्ति आ जाती है, तो यह भक्षण प्रवृत्ति **ज्येष्ठस्य पुत्रस्य**=ज्येष्ठ पुत्र के **द्विभागधनम् आदाय**=दुगने भाग में प्राप्त हुए-हुए धन को भी **अवर्त्या प्रक्षिणाति**=दरिद्रता से विनाश कर देती है। (अवर्ति Bad fortune, poverty)। २. मांसभक्षण की प्रवृत्ति भाइयों के पारस्परिक प्रेम को भी कम कर देती है। उनके दायविभाग में भी कलह उत्पन्न हो जाते हैं। बड़ा भाई दुगुना हड़पने की वृत्तिवाला बनता है, परन्तु यह दुगुना धन भी उसका मांसभक्षण आदि दुर्व्यसनों में समाप्त हो जाता है। इस घर में दरिद्रता व दौर्भाग्य का राज्य हो जाता है।

भावार्थ—मांसभक्षण से परस्पर प्रेम नहीं रहता। भाई आपस में दायविभाग पर ही लड़ पड़ते हैं। यदि अन्याय से बड़ा लड़का दुगना धन ले भी लेता है, तो भी वह शीघ्र ही धन को व्यसनों में समाप्त करके दरिद्र हो जाता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कृषते, वनुते, वस्नेन विन्दते

यत्कृषते यद्वनुते यच्च वस्नेन विन्दते। सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः॥ ३६॥

१. **यत्**=यदि **क्रव्यात् अनिराहितः**=मांसभक्षक अग्नि घर से दूर नहीं स्थापित किया जाता, अर्थात् यदि मांसभक्षण प्रवृत्ति से दूर नहीं रहा जाता तो **मर्त्यस्य तत् सर्वं नास्ति**=मनुष्य का वह सब नष्ट हो जाता है **यत्**=जो वह **कृषते**=कृषि द्वारा प्राप्त करता है, **यद् वनुते**=वह पिता की सम्पत्ति में संविभाग द्वारा प्राप्त करता है, **च**=और **यत्**=जो **वस्नेन विन्दते**=(वस्न=मूल्य) क्रय-विक्रय व्यवहार से प्राप्त करता है।

भावार्थ—मांसभक्षण की प्रवृत्ति मनुष्य को क्रूर व विलासी बनाकर विनाश की ओर ले-जाती है। यह उसके सब धन के विनाश का कारण बनती है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती** ॥

अयज्ञियः, हतवर्चाः

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे।
छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद्यं क्रव्यादनुवर्तते॥ ३७॥

१. **क्रव्यात् यं अनुवर्तते**=मांसभक्षक अग्नि जिसका अनुवर्तन करती है, अर्थात् जो मांसभक्षण की प्रवृत्तिवाला बनता है, वह **अयज्ञियः भवति**=यज्ञों की प्रवृत्तिवाला नहीं रहता—श्रेष्ठ कर्मों से दूर होकर क्रूर कर्मों को करने में प्रवृत्त हो जाता है। विलास में पड़ा हुआ यह मनुष्य **हतवर्चाः**=नष्ट तेजवाला होता है। **एनेन हविः अत्तवे न**=इससे दानपूर्वक अदन (हवि) नहीं किया जाता—यह सारे-का-सारा खाने की करता है—अपने ही मुँह में आहुति देनेवाला असुर बन जाता है। २. यह क्रव्याद् अग्नि इस मांसाहारी को **कृष्याः धनात् छिनत्ति**=कृषि से उत्पन्न धन से पृथक् कर देती है। **गोः (धनात्)**=गौवों के पालन से प्राप्त धन से पृथक् कर

देती है। यह कृषि व गो-पालन आदि से दूर होकर सट्टे आदि में प्रवृत्त हो जाता है। अपने विलासमय जीवन के लिए एक रात में ही धनी बनने के स्वप्न देखा करता है।

भावार्थ—मांसाहारी 'अयज्ञिय व हतवर्चा' हो जाता है। यह असुर बन जाता है। इसे कृषि व गोपालन के स्थान में सट्टे का व्यापार प्रिय हो जाता है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विषयों का आकर्षण

मुहुर्गृध्यैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य। क्रव्याद्यान्नग्निरन्तिकादनुविद्वान्वितावति ॥ ३८ ॥

१. **यान्**=जिन पुरुषों को **क्रव्यात् अग्निः**=यह मांसभक्षक अग्नि **अन्तिकात्**=समीप से **अनुविद्वान्**=अनुक्रम से वेदना को प्राप्त कराता हुआ (विद्—वेदना का अनुभव) **वितावति**=(तु हिंसायाम्) विशेषरूप से हिंसित करता है, वह **मर्त्यः**=मनुष्य **आर्तिं नि इत्य**=पीड़ा को निश्चय से प्राप्त करके भी **मुहुः**=फिर **गृध्यैः प्रवदति**=भोगलिप्सुओं के साथ बात करता है। अपने भोगप्रवण साथियों के वातावरण से दूर नहीं हो पाता। मांसभोजन आरम्भ में बेशक स्वादिष्ट व उत्तेजक हो, परन्तु कुछ देर बाद यह पीड़ाओं व रोगों का कारण बनने लगता है। धीमे-धीमे यह वेदना को प्राप्त कराता हुआ हिंसा का कारण बनता है, परन्तु विषयों का स्वभाव ही ऐसा है कि मनुष्य पीड़ित होकर भी फिर अपने भोगप्रवण साथियों के संग में इन भोगों में आसक्त हो जाता है।

भावार्थ—मांसभोजन विविध पीड़ाओं का कारण बनता है, परन्तु मांसभोजनादि में आसक्त पुरुष पीड़ित होकर भी इन विषयों को छोड़ नहीं पाता।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मांसभोजन से रोग व मृत्यु

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः।
ब्रह्मैव विद्वान्नेष्योऽ३ यः क्रव्यादं निरादधत्॥ ३९ ॥

१. **ब्रह्म विद्वान् एव**=चतुर्वेदवेत्ता ज्ञानी पुरुष ही **एष्यः**=ढूँढना चाहिए **यः**=जोकि उचित ज्ञान देकर **क्रव्यादम्**=इस मांसभक्षक अग्नि को **निरादधत्**=हमारे घरों से दूर ही स्थापित करे। यह ज्ञानी पुरुष मनुष्यों को समझाए कि इस मांसभोजन के परिणामस्वरूप **गृहाः**=घर **ग्राह्या**=जकड़ लेनेवाले, गठिया आदि रोगों से **संसृज्यन्ते**=संसृष्ट—युक्त हो जाते हैं। मांसभोजन इसलिए हेय है **यत्**=चूँकि **स्त्रियाः पतिः म्रियते**=स्त्री का पति असमय में ही काल के वश में हो जाता है।

भावार्थ—ज्ञानीपुरुष गृहस्थों को उपदेश दे कि मांसभोजन से गठिया आदि रोगों की उत्पत्ति हो जाती है और मनुष्य की असमय में ही मृत्यु हो जाती है, अतः यह त्याज्य है।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**पुरस्ताद्ककुम्मत्यनुष्टुप्** ॥

'रिप्र, शमल, दुष्कृत' निराकरण

यद्रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम्।
आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्रेः संकसुकाच्च यत्॥ ४० ॥

१. **यत् रिप्रम्**=जिस दोष को, **शमलम्**=पाप (sin) को, **च**=और **यत् दुष्कृतम्**=जिस दुष्कर्म—अशुभ व्यवहार को **चकृम**=हम कर बैठें, **आपः**=(आपो नाराः इति प्रोक्ताः, आप्नुवन्ति सद्गुणान् याः ताः) उत्तम गुणोंवाले पुरुष **मा**=मुझे **तस्मात्**=उस पाप से **शुम्भन्तु**=शुद्ध करनेवाले हों। वे आप्त पुरुष उत्तम ज्ञान देकर मेरे दुर्गुणों को दूर करनेवाले हों। २. **च**=तथा **यत्**=जो भी

संकसुकात् अग्नेः=संकसुक अग्नि, अर्थात् सम्यक् शासन करनेवाले व सारे ब्राह्माण्ड को गति देनेवाले प्रभु से दूर होकर हम भी पाप कर बैठते हैं, उस सबसे ये आप्त पुरुष मुझे दूर करनेवाले हों।

भावार्थ—हम कर्मों में जो भी त्रुटि कर बैठते हैं या अशुभ व्यवहार कर बैठते हैं, उस सबसे सद्गुणी पुरुष हमें दूर करनेवाले हों। उस शासक, गति-प्रदाता प्रभु को भूलकर हम जो पाप कर बैठते हैं, उससे भी ये आप्त पुरुष हमें पृथक् करें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्रजानतीः (आपः)

ता अधरादुदीचीरावव्रन्प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः।
पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः॥ ४१॥

१. **ताः**=वे **प्रजानतीः**=प्रकृष्ट ज्ञानवाली आप्त प्रजाएँ **अधरात्**=निम्न मार्गों को छोड़कर **उदीचीः**=उत्कृष्ट मार्गों से गति करनेवाली होती हुई **देवयानैः पथिभिः**=देवयान मार्गों से **आववृत्रन्**=कर्मों में आवर्तनवाली होती हैं। ज्ञानी पुरुष सदा निम्न मार्गों को छोड़कर उत्कृष्ट मार्गों से चलते हैं। ये आसुरभावों को त्यागकर दैवी प्रवृत्तियों को अपनाते हैं। २. **पर्वतस्य**=पूरण करनेवाले **वृषभस्य**=सुखों के वर्षक प्रभु के **अधिपृष्ठे**=आश्रय में—प्रभु की गोद में **पुराणीः सरितः**=क्षीण (Decayed) हुई-हुई नदियाँ फिर से **नवाः चरन्ति**=नवीन होकर गतिवाली होती हैं। जैसे वृष्टिवाले पर्वत पर क्षीण हुई-हुई नदियाँ फिर से जलपूर्ण होकर प्रवाहवाली होती हैं, उसी प्रकार हमारा पूर्ण करनेवाले, सुखों के वर्षक प्रभु के आश्रय में हमारा निम्न स्तर का जीवन पुनः उच्च स्तर का बन जाता है। हम नीचे से ऊपर आ जाते हैं। आसुरमार्ग को छोड़कर दिव्यमार्ग का आश्रय करते हैं।

भावार्थ—प्रभु की गोद में हम निम्न मार्ग को छोड़कर उत्कृष्ट मार्ग पर गति करनेवाले बनें। प्रभुस्मरण हमें देवयान में प्रेरित करे। क्षीण हुए-हुए हम फिर से पूर्ण हो जाएँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**त्रिपदाभुरिगार्चीगायत्री** ॥

देवयजन की प्राप्ति

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह॥ ४२॥

१. हे **अक्रव्यात् अग्ने**= अमांसभक्षक—सात्त्विक अन्न का सेवन करनेवाले अग्रणी पुरुष! तू ज्ञानोपदेश के द्वारा **क्रव्यादं नुद**=मांसभक्षक अग्नि को हमसे दूर कर—हमें मांसभोजन की प्रवृत्ति से बचा और इसप्रकार **देवयजनं आवह**=देवयजन को सब प्रकार से प्राप्त करा। हम आपके द्वारा ज्ञान को प्राप्त करके देवों के समान यज्ञशील बन जाएँ। २. मांसभक्षण हमें स्वार्थी बनाकर देवयजन से दूर करता है। इस मांसभक्षण-प्रवृत्ति से ऊपर उठकर हम पुनः देवों की तरह यज्ञमय जीवनवाले बनें—हम औरों के लिए जीना सीखें।

भावार्थ—क्रव्याद् अग्नि को दूर करके हम देवयजन को प्राप्त करें, मांसभोजन से ऊपर उठकर हम यज्ञशील बनें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मांसभक्षण से व्याघ्रयोनि

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात्।
व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम्॥ ४३॥

१. प्रभु कहते हैं कि **इमम्**=इस पुरुष में **क्रव्यात् आविवेश**=मांसभक्षक अग्नि ने प्रवेश किया है, अर्थात् यह मांस-भक्षण के स्वभाववाला बना है। **अयम्**=यह एक अन्य पुरुष **क्रव्यादम् अनु अगात्**=मांसभक्षक पुरुष के पीछे चलनेवाला हुआ है—मांसाहारी के संग में रहनेवाला हुआ है। २. इन दोनों को—मांसभक्षक को तथा मांसभक्षक का संग करनेवाले को **व्याघ्रौ कृत्वा**=व्याघ्रा बनाकर **तं शिवापरम्**=(शिव-अपर) उस शिव से भिन्न—मांसभक्षणरूप अशिव दोष को **नानानं हरामि**=पृथक् प्राप्त कराके दूर करता हूँ (नाना+णीञ् प्रापणे) प्रभु मांसाहारी को व्याघ्र बनाकर मांसभक्षण से रजा देते हैं—वह इससे ऊब-सा उठता और उसका यह दोष दूर हो जाता है।

भावार्थ—'मांसभक्षक व मांसभक्षक का संगी' ये दोनों व्याघ्र योनि में जाते हैं। इसप्रकार प्रभु इन्हें मांसभक्षण प्रवृत्ति से बचने का निर्देश करते हैं।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**द्विपदाऽर्चीबृहती**॥

अन्तर्धि—परिधि

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणामग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः॥ ४४॥

१. 'गार्हपत्य अग्नि' शब्द 'पिता' के लिए भी प्रयुक्त होता है **'पिता वै गार्हपत्योऽग्निः'** मनु०। यह पिता जब प्रभु का उपासन करता है तब इस गृहपति से युक्त 'प्रभु' भी 'गार्हपत्य अग्नि' है। यह प्रभुरूप गार्हपत्य अग्नि **देवानां अन्तर्धिः**=देवों को अन्दर धारण करनेवाला है। प्रभुस्मरण से दिव्यगुणों का धारण होता है। यह गार्हपत्य अग्नि **मनुष्याणां परिधिः**=मनुष्यों का चारों ओर से धारण व रक्षण करनेवाला है। प्रभु उपासकों का रक्षण करते ही हैं। २. **गार्हपत्यः अग्निः**=यह उपासना करनेवाले गृहपतियों से संयुक्त अग्रणी प्रभु **उभयान् अन्तरा श्रितः**=दोनों के बीच में श्रित हैं—स्थित हैं। ये प्रभु एक ओर हमें 'देव' बनाते हैं, दूसरी ओर 'मनुष्य'। प्रभु का उपासक देव तो बनता ही है—महादेव के सम्पर्क में देव नहीं बनेगा तो क्या बनेगा? यह उपासक इस प्राकृतिक संसार में भी सब कार्यों को मननपूर्वक करता है। मननपूर्वक कार्यों को करता हुआ ऐश्वर्यवान् तो बनता है, परन्तु उस ऐश्वर्य में फँसता नहीं।

भावार्थ—प्रभु 'गार्हपत्य अग्नि' हैं—प्रत्येक गृहपति से उपासना के योग्य हैं। यह उपासना उसे 'देव' व 'मनुष्य' बनाएगी।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**जगती**॥

अच्छे और अधिक अच्छे

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः।
सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिमुषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्मै॥ ४५॥

१. हे **अग्ने**=गृहपति से युक्त (उपासित) अग्रणी प्रभो! **त्वम्**=आप **जीवानाम् आयुः प्रतिर**=जीवों के आयुष्य को बढ़ाइए। आपकी कृपा से **ये**=जो जीव उत्तम जीवन बिताकर **मृताः**=अब इस शरीर को छोड़ चुके हैं, वे **पितॄणां लोकम् अपि गच्छन्तु**=पितृलोक को प्राप्त हों—इस मर्त्यलोक में जन्म न लेकर पितृलोक—चन्द्रलोक में वे जन्म लेने के योग्य बनें। २. वह **सुगार्हपत्यः**=गृहपतियों से उपास्य श्रेष्ठ प्रभु **अरातिं वितपन्**=अदानवृत्ति को हममें बुझाता हुआ (वि-तप्) अथवा हमारे काम-क्रोध आदि शत्रुओं को संतप्त करनेवाला है। प्रभु निरन्तर हमारे शत्रुओं का विनाश कर रहे हैं। हे प्रभो! आप **अस्मै**=हमारे लिए **उषां उषाम्**=प्रत्येक उषा को **श्रेयसीम्**=प्रशस्यतर रूप में **धेहि**=धारण करो। हम कल से आज अच्छे बनें, आज से आनेवाले दिन में और अच्छे बनें।

भावार्थ—प्रभु हमें दीर्घजीवन प्राप्त कराएँ। हम मरकर उत्कृष्ट लोकों में ही जन्म लेनेवाले बनें। प्रभु हमारे शत्रुओं को संतप्त करके हमारे लिए प्रत्येक उषाकाल को पूर्वापेक्षया अधिक प्रशस्त बनाएँ।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीत्रिष्टुप्** ॥

ऊर्ज्+रयि

सर्वाँनग्ने सहमानः सपत्नानेषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि ॥ ४६ ॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **एषाम्**=इन अपने भक्तों के **सर्वान् सपत्नान्**=सब शत्रुओं को **सहमानः**=पराभूत करते हुए आप **अस्मासु**=हम उपासकों के जीवनों में **ऊर्जम्**=बल व प्राणशक्ति को तथा **रयिम्**=ऐश्वर्य को **धेहि**=धारण कीजिए। 'काम-वासना' को समाप्त करके आप हमें बल प्राप्त कराइए। 'क्रोध' के विनाश के द्वारा हमारी प्राणशक्ति को सुरक्षित कीजिए तथा 'लोभ' को दूर करके हमें उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराइए।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हम 'काम' पर विजय प्राप्त करके बल-सम्पन्न बनें, क्रोध को जीतकर प्राणशक्ति का रक्षण करें तथा लोभ को परास्त करके उत्तम ऐश्वर्यवाले हों।

ऋषिः—भृगुः ॥ देवता—अग्निः, मन्त्रोक्ताः ॥ छन्दः—पञ्चपदाबार्हतवैराजगर्भाजगती ॥

'पप्रि—वह्नि' प्रभु

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षदुरितादवद्यात्।
तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पातास्ताम् ॥ ४७ ॥

१. **इमम्**=इस **इन्द्रम्**=परमैश्वर्यशाली, **वह्निम्**=लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले (वह् प्रापणे) **पप्रिम्**=सबका पालन व पूरण करनेवाले प्रभु के **अनु**=साथ **आरभध्वम्**=प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ करो—प्रभुस्मरणपूर्वक प्रत्येक कार्य को करो। **सः**=वे प्रभु **वः**=तुम्हें **दुरितात्**=दुराचरण से व **अवद्यात्**=सब निन्द्य कर्मों से **निर्वक्षत्**=दूर करेंगे। **तेन**=उस प्रभु के साथ, अर्थात् प्रभु की उपासना करते हुए तुमपर **आपतन्तं शरुम्**=गिरता हुआ अस्त्र **अपहत**=दूर नष्ट होता है। **तेन**=उस प्रभु के साथ होते हुए तुम **रुद्रस्य अस्ताम्**=(अस्तां=An arrow) रुद्र से फेंके गये बाण से **परिपात**=चारों ओर से बचाओ। ऐसा प्रयत्न करो कि यह रुद्र का बाण तुमपर न पड़े। प्रभु की उपासना हमें अन्तःशत्रुओं के आक्रमण व आधिदैविक आपत्तियों से बचाएगी।

भावार्थ—प्रभु हमें लक्ष्य-स्थान पर पहुँचानेवाले हैं, वे हमारा पालन व पूरण करनेवाले हैं। प्रभु हमें पापों से बचाते हैं। प्रभु की उपासना हमें आक्रमणकारी शत्रुओं से बचाती है तथा हम प्रभु के क्रोध-पात्र नहीं बनते।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

'अनड्वान्+प्लव' प्रभु

अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वं स वो निर्वक्षदुरितादवद्यात्।
आ रोहत सवितुर्नावमेतां षड्भिरुर्वीभिरमतिं तरेम ॥ ४८ ॥

१. **अनड्वाहम्**=संसार-शकट का वहन करनेवाले तथा **प्लवम्**=भव-सागर से पार करनेवाले बेड़ेरूप प्रभु को **अनु आरभध्वम्**=स्मरण करके सब कार्यों का प्रारम्भ करो। **सः**=वे प्रभु **वः**=तुम्हें **दुरितात्**=सब दुराचरणों से तथा **अवद्यात्**=निन्द्य कर्मों से **निर्वक्षत्**=पार करते हैं। प्रभुस्मरणपूर्वक कार्यों के करने पर दुराचरण व पाप से हम सदा दूर रहते हैं। २. हे मनुष्यो! तुम **सवितुः**=उस उत्पादक व प्रेरक प्रभु की **एतां नावम् आरोहत**=इस नाव पर आरोहण करो।

प्रभुरूपी नाव तुम्हें कभी इस भव-सागर में डूबने नहीं देगी। **षड्भिः उर्विभिः**=(उर्णुञ् आच्छादने) छह रक्षणों के द्वारा (उर्व्या=Protection)—'काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद व मत्सर' रूप छह शत्रुओं से रक्षण के द्वारा **अमतिं तरेम**=हम अमति को—बुद्धि के अभाव व अप्रशस्त विचारों को तैर जाएँ। प्रभुरूप नाव में बैठे हुए हम इन काम-क्रोध आदि की प्रबल तरंगों से आहत न हों और सदा शुभ विचारवाले बने रहें।

भावार्थ—प्रभुरूप नाव में बैठकर हम भव-सागर को तैर जाएँ। इस नाव में बैठ हुए हम काम-क्रोध आदि की तरंगों से आक्रान्त न होंगे, हम शुद्ध विचारोंवाले बने रहेंगे।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

पुरुषगन्धिः

अहोरात्रे अन्वेषि बिभ्रत्क्षेम्यस्तिष्ठन्प्रतरणः सुवीरः।
अनातुरान्त्सुमनसस्तल्प बिभ्रज्ज्योगेव नः पुरुषगन्धिरेधि॥ ४९॥

१. हे **तल्प**=सर्वाधार प्रभो! सबके विश्रामस्थानभूत प्रभो! आप **अहोरात्रे**=दिन-रात **बिभ्रत्**=सबको धारण करते हुए **अनु एषि**=अनुकूल गतिवाले होते हो। **क्षेम्यः**=सबके क्षेम करने में उत्तम, **तिष्ठन्**=सदा खड़े हुए—सदा सावधान **प्रतरणः**=भव-सागर से तरानेवाले, **सुवीरः**=हमारे शत्रुओं को सम्यक् कम्पित करके दूर करनेवाले हैं। २. हे प्रभो! आप **नः**=हम **अनातुरान्**=नीरोग तथा **सुमनसः**=उत्तम मनवालों को **बिभ्रत्**=धारण करते हुए **ज्योग् एव**=दीर्घकाल तक ही **पुरुषगन्धिः एधि**='पुनाति—रुणद्धि—स्यति' अपने को पवित्र करनेवाले, अपने में शक्ति का संयम (निरोध) करनेवाले तथा शत्रुओं का अन्त करनेवाले पुरुषों के साथ सम्बन्धवाले (गन्ध=सम्बन्ध) होओ। हम पुरुष बनकर आपके सम्बन्धी बन पाएँ।

भावार्थ—वे प्रभु सर्वाधार हैं, दिन-रात हमारा धारण कर रहे हैं। हमें आधि-व्याधि-शून्य बनाते हैं। वे प्रभु हमारे वस्तुतः सम्बन्धी होते हैं यदि हम 'अपने को पवित्र बनाएँ, अपने में शक्ति का संयम करें तथा काम-क्रोध आदि का अन्त कर दें।'

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**उपरिष्टाद्विराड्बृहती**॥

मांसाहार व पापमय जीवन

ते देवेभ्य आ वृश्चन्ते पापं जीवन्ति सर्वदा।
क्रव्याद्यानग्निरन्तिकादश्वइवानुवपते नडम्॥ ५०॥

१. **यान्**=जिन पुरुषों को **क्रव्याद् अग्निः**=मांसभक्षक अग्नि—मांसभक्षण की प्रवृत्ति **अन्तिकात्**=समीप से **अनुवपते**=उस प्रकार छिन्न करनेवाली होती है, जैसेकि **अश्वः नडम्**=एक घोड़ा तृष्णविशेष को काट डालता है। **ते**=वे मांसाहारी पुरुष **देवेभ्यः आवृश्चन्ते**=देवों से कट जाते हैं—देवों से उनका सम्बन्ध नहीं रहता—उन्हें दिव्य प्रवृत्तियाँ छोड़ जाती हैं तथा वे **सर्वदा पापं जीवन्ति**=सदा पापमय जीवनवाले हो जाते हैं।

भावार्थ—मांसाहार से दिव्य प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और जीवन पापमय हो जाता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पर-कुम्भी का अपहरण

ये ऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते।
ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा॥ ५१॥

१. **ये**=जो **अश्रद्धाः**=प्रभु तथा धर्मकृत्यों में श्रद्धावाले न होते हुए **धनकाम्या**=धन की

कामना से **क्रव्यादा**=मांसाहारी पुरुषों के साथ **समासते**=उठते-बैठते हैं, **ते**=वे **वै**=निश्चय से **सर्वदा**=सदा **अन्येषाम्**=दूसरों की **कुम्भीम् पर्यादधति**=कुम्भी पर ही मन को लगाये रखते हैं। यहाँ 'कुम्भी' शब्द 'छोटे से कोश' के लिए प्रयुक्त हुआ है। ये लोग दूसरों के कोश का अपहरण करना चाहते हैं। इनकी प्रवृत्ति छलछिद्र से पराय धन को लूटने की बन जाती है।

भावार्थ—श्रद्धाशून्य व धन की लालसावाला पुरुष मांसाहारियों के संग से दूसरों के धनों को छीनने की मनोवृत्तिवाला बन जाता है।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्विराड्बृहती**॥

व्यसन की दुरन्तता

प्रेव॑ पिपतिषति॒ मन॑सा॒ मुहु॒रा व॑र्तते॒ पुनः॑।
क्र॒व्याद्या॒नग्निर॒न्तिकाद॑नु॒विद्वा॒न्वि॒तावति॥ ५२॥

१. **यान्**=जिन मनुष्यों को **क्रव्यात् अग्निः**=मांसभक्षण करनेवाला अग्नि **अन्तिकात्**=बहुत समीपता के कारण, अर्थात् मांसभक्षण की प्रवृत्ति के बहुत बढ़ जाने के कारण **अनुविद्वान्**=(विद्=वेदना की अनुभूति) अनुक्रम से वेदना को प्राप्त कराता हुआ **वितावति**=हिंसित करता है, वह मनुष्य **मनसा**=मन से—हृदय से **प्रपिपतिषति इव**=इस मांसभक्षण से दूर जाने की कामनावाला-सा होता है। उसे कष्ट के कारण विचार होता है कि 'मांस खाना छोड़ दूँ'। वह छोड़ता भी है, परन्तु **पुनः**=फिर **मुहुः**=बारम्बार **आवर्तते**=मांसभक्षण की ओर लौट आता है।

भावार्थ—मांसभक्षण का व्यसन विविध वेदनाओं का कारण बनता है। वेदनाओं से पीड़ित होकर वह मन में व्यसन से ऊपर उठने का निश्चय करता है, परन्तु बारम्बार इस व्यसन में प्रवृत्त हो जाता है। इसकी हेयता को समझता हुआ भी वह इसे छोड़ नहीं पाता।

ऋषिः—**भृगुः**॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अविः कृष्णा—माषाः पिष्टाः (ते भागधेयम्)

अविः॑ कृ॒ष्णा भा॑ग॒धेयं॑ पशू॒नां सीसं॑ क्र॒व्यादपि॑ चन्द्रं॒ त॑ आहुः।
माषाः॑ पि॒ष्टा भा॑ग॒धेयं॑ ते ह॒व्यम॑रण्यान्या॒ गह्व॑रं सचस्व॥ ५३॥

१. **अविः**=(अव रक्षणम्) मातृरूपेण सबका रक्षण करनेवाली, **कृष्णा**=सबको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली प्रकृति **पशूनां भागधेयम्**=सब प्राणियों का भाग है। सामान्यतः मनुष्य को प्रकृति से प्रदत्त इन वानस्पतिक पदार्थों का सेवन करना ही ठीक है। हे **क्रव्यात्**=मांसभक्षण करनेवाले पुरुष! **ते चन्द्रं अपि**=तेरी इस चाँदी को भी—धन को भी—**सीसं आहुः**=तेरे लिए सीसे की गोली कहते हैं। तेरा यह धन तेरे ही विनाश का कारण बन जाता है। २. **पिष्टाः माषाः**=पिसे हुए ये उड़द ही **ते भागधेयम्**=तेरा भाग हैं। इन्हीं का तूने सेवन करना है, मांस का नहीं। अपनी वृत्ति को उत्तम बनाये रखने के लिए तू **हव्यम्**=हव्य को—अग्निहोत्र को—तथा **आरण्यान्याः गह्वरम्**=अरण्य की गुफा को—ध्यान के लिए एकान्त प्रदेश को (सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः) **सचस्व**=सेवन करनेवाला बन। यह 'सन्ध्या-हवन' तेरी वृत्ति को उत्तम बनाएगा और तू मांसभक्षणादि दुर्व्यसनों से बचा रहेगा।

भावार्थ—हमें प्रकृतिमाता से दिये गये वानस्पतिक पदार्थों का ही सेवन करना है। माषों का ही सेवन करना है, मांस का नहीं। अपनी प्रवृत्ति को ठीक रखने के लिए ही हम 'ध्यान व यज्ञ' का सेवन करनेवाले बनें।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'तिल्पिञ्जं—दण्डनम्' नडम्

इ॒षीका॑ं॒ जर॑तीमि॒ष्ट्वा ति॒ल्पिञ्ज॒ं दण्ड॑नं न॒डम्।
तमिन्द्र॑ इ॒ध्मं कृ॒त्वा य॒मस्या॒ग्निं नि॒राद॑धौ॥ ५४॥

१. **जरतीम्**=(जरिता गरिता स्तोता) उस प्रभु का स्तवन करती हुई (सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्०) **इषीकाम्**=(to urge, impel) कर्त्तव्य-कर्मों की प्रेरणा देती हुई वेदवाणी को **इष्ट्वा**=अपने साथ संगत करके (यज् संगतिकरणे), तथा **तिल्पिञ्जम्**=(तिल् स्निग्धीभावे, पिजि निकेतने) स्नेह के निकेतन—प्रेमपुञ्ज—प्राणिमात्र के प्रति दयालु, **दण्डनम्**=मार्गभ्रष्ट होने पर दण्ड देनेवाले—न्यायकारी **नडम्**=(नड् गहने) गहन व अचिन्त्यस्वरूप प्रभु को **इष्ट्वा**=पूजकर 'यज देवपूजायाम्' **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय उपासक **तम्**=उस प्रभु को ही **इध्मं कृत्वा**=दीप्त बनाकर—प्रभु की उपासना से प्रभु के प्रकाश को देखकर, **यमस्य अग्निं निरादधौ**=यम की अग्नि को अपने से दूर स्थापित करता है, अर्थात् इसे उस नियन्ता प्रभु के दण्ड से दण्डित नहीं होना पड़ता। इसके लिए प्रभु का रूप 'शिव' ही होता है—'रुद्र' रूप नहीं।

भावार्थ—हम वेदवाणी का अध्ययन करें तथा उस 'न्यायकारी, दयालु' प्रभु का स्मरण करें। ऐसा करने पर हमें प्रभु का प्रकाश प्राप्त होगा और हमें मार्गभ्रंश के कारण होनेवाले कष्ट न उठाने पड़ेंगे।

ऋषिः—**भृगुः** ॥ देवता—**अग्निः, मन्त्रोक्ताः** ॥ छन्दः—**बृहतीगर्भात्रिष्टुप्** ॥

अर्पण

प्र॒त्यञ्च॑मर्कं प्र॑त्यर्पयि॒त्वा प्र॑वि॒द्वान्प॒न्थां॑ वि ह्या ∫ वि॒वेश॑।
परा॒मीषा॒मसू॑न्दिदेश॑ दी॒र्घेणायु॑षा॒ सम्मि॒मान्त्सृ॑जामि॥ ५५॥

१. **प्रत्यञ्चम्**=प्रत्यग्—अन्दर हृदय में विद्यमान **अर्कम् प्रति**=पूजनीय व सूर्यसम दीप्त प्रभु के प्रति **अर्पयित्वा**=अपना अर्पण करके **प्रविद्वान्**=यह प्रकृष्ट ज्ञानी पुरुष **हि**=निश्चय से **पन्थां वि आविवेश**=मार्ग पर विशेषरूप से प्रविष्ट होता है—यह कभी मार्गभ्रष्ट नहीं होता। २. इसप्रकार प्रभु के प्रति अर्पण करके, ज्ञानप्रकाश को प्राप्त करनेवाला और सदा सुमार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति **अमीषाम्**=उन शत्रुभूत काम-क्रोध आदि के **असून् परादिदेश**=प्राणों को परादिष्ट करता है—नष्ट करता है। प्रभु कहते हैं कि **इमान्**=इन अपने इन्द्रिय, मन, बुद्धि-साधनों को शत्रुओं का शिकार न होने देनेवाले उपासकों को **दीर्घेण आयुषा संसृजामि**=दीर्घजीवन से युक्त करता हूँ।

भावार्थ—हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें, ज्ञानी बनकर सुमार्ग पर चलें। शत्रुभूत काम-क्रोध को विनष्ट करें तब प्रभु हमें दीर्घजीवन से संयुक्त करेंगे।

अपने जीवन को प्रभु उपासन द्वारा नियन्त्रित करनेवाला 'यम' अगले सूक्त का ऋषि है। यह अपने गृहस्थ-जीवन को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न करता है। स्वर्ग बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि भोजन सात्त्विक हो—वहाँ मांस आदि का प्रवेश न हो। सायण लिखते हैं कि **'स्वर्गौदनात् क्रव्यादं रक्षश्च पिशाचं च परिहरति'** स्वर्ग को प्राप्त करानेवाले ओदन से 'क्रव्याद् अग्नि' को दूर रखता है—मांसभक्षण का प्रवेश नहीं होने देता। इस सूक्त का देवता (विषय) 'स्वर्गौदन अग्नि' ही है।

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

पुमान्

पुमान्पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते।
यावन्तावग्ने प्रथमं समेयथुस्तद्वां वयो यमराज्ये समानम्॥ १॥

१. घर को स्वर्ग बनाने के लिए सर्वप्रथम आवश्यक बात यह है कि मनुष्य शक्तिशाली हो। निर्बलता कभी स्वर्ग को जन्म नहीं दे सकती, अतः कहते हैं कि **पुमान्**=तू शक्तिशाली बन—पुरुष बन। **पुंसः अधितिष्ठ**=शक्तिशालियों का अधिष्ठाता बन। शक्तिशालियों में तेरा स्थान उच्च हो। **चर्म इहि**=(फलकोऽस्त्री फलं चर्म) तू ढाल को प्राप्त हो। शरीर में 'वीर्य' ही वह ढाल है, जोकि सब रोगरूप शत्रुओं के आक्रमण से हमें बचाती है। **तत्र**=वहाँ गृहस्थाश्रम में **ह्वयस्व**=तू उस जीवन के साथी को पुकार **यतमा प्रिया ते**=जोकि तुझे प्रिय हो। वस्तुतः घर का स्वर्ग बनना इस बात पर निर्भर करता है कि 'जीवन का साथी अनुकूल मिलता है या नहीं'। साथी की अनुकूलता में घर अवश्य स्वर्ग बनता है। २. **अग्ने**=पहले ब्रह्मचर्याश्रम में आप **यावन्तौ**=जितने **प्रथमं समेयथुः**=प्रथम स्थान में गतिवाले होते हो, अर्थात् उन्नति करते हो, **तत्**=वह **वाम्**=आप दोनों का **वयः**=जीवन **यमराज्ये**=संयत जीवनवाले पुरुष के राज्यभूत इस गृहस्थ में **समानम्**=समान बना रहे, अर्थात् जैसे ब्रह्मचर्याश्रम में आपका जीवन संयम से उन्नत हुआ, उसी प्रकार इस गृहस्थ को भी आप दोनों ने **यमराज्ये**=संयमीपुरुष का राज्य बनाना। इस यमराज्य में आप दोनों का जीवन उसी प्रकार उन्नत बना रहे, जैसेकि ब्रह्मचर्याश्रम में उन्नत था।

भावार्थ—घर को स्वर्ग बनाने के लिए आवश्यक है कि (क) पुरुष शक्तिशाली हो—वीर्यरूप ढालवाला हो। (ख) उसे जीवन का साथी अनुकूल मिले (ग) गृहस्थ को भी ये 'यमराज्य' बनाये रक्खें, अर्थात् गृहस्थ में भी संयम व व्यवस्था से चलें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उतना 'ज्ञान, वीर्य, तेज व वाजिन (शक्ति)'

तावद्वां चक्षुस्तति वीर्या ∫ णि तावत्तेजस्तति धा वाजिनानि।
अग्निः शरीरं सचेत यदैधोऽधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः॥ २॥

१. गतमन्त्र के अनुसर जितना-जितना (यावन्तौ) पति-पत्नी ब्रह्मचर्याश्रम की भाँति गृहस्थ में भी संयम से चलते हैं (यमराज्ये) **तावत्**=उतना ही **वाम्**=आप दोनों का **चक्षुः**=ज्ञान होता है, **तति वीर्याणि**=उतनी ही वीर्यशक्ति होती है। **तावत् तेजः**=उतनी ही आप तेजस्विता प्राप्त करते हो, **ततिधा**=उतने ही प्रकार के **वाजिनानि**=आपके बल होते हैं। २. ('अग्निर्वै कामः'—कौ० १९.२) परन्तु **यदा**=जब **अग्निः**=कामाग्नि **शरीरं सचते**=शरीर में समवेत होती है, तब **एधः**=यह शरीर उसके लिए काष्ठ-सा हो जाता है। कामाग्नि शरीररूप काष्ठ को दग्ध कर देती है, अतः संयमपूर्वक जीवन बिताते हुए इस नियम का ध्यान रक्खो कि **अधा**=अब **पक्वात्**=परिपक्व वीर्य से **मिथुना**=तुम दोनों स्त्री पुमान् **संभवाथः**=मिलकर सन्तान को जन्म देनेवाले होओ। सन्तानोत्पत्ति के लिए ही परस्पर मेल इष्ट है, विलास के लिए नहीं। कामाग्नि तो हमें दग्ध ही कर डालेगी। कामाग्नि से बचना नितान्त आवश्यक है।

भावार्थ—(घ) जितना हमारे जीवन में संयम होता है उतना ही हमें 'ज्ञान, वीर्य, तेज व वाजिन (शक्ति)' प्राप्त होता है। (ङ) कामाग्नि हमें दग्ध कर देती है, अतः कामाग्नि का शिकार न होते हुए हम परिपक्व वीर्य से सन्तान को जन्म देनेवाले हों। सन्तानोत्पत्ति के लिए ही पति-

पत्नी का परस्पर सम्पर्क हो।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

मिलकर

सम॑स्मिँल्लो॒के सम॒ देव॒याने॒ सं स्मा॑ स॒मेतं॑ यम॒राज्ये॑षु।
पू॒तौ प॒वित्रै॒रुप॒ तद्ध्व॑येथां॒ यद्यद्रेतो॒ अधि॑ वां संब॒भूव॑॥ ३॥

१. हे पति-पत्नी! तुम दोनों **अस्मिन् लोके**=इस लोक में **सम् एतम्**=मिलकर चलो। तुम्हारी सब लौकिक क्रियाएँ परस्पर मिलकर हों—उनमें तुम्हारा विरोध न हो। **उ**=और **देवयाने**=देवयान मार्ग पर—मोक्ष की ओर ले-जानेवाले मार्ग पर **सम्**=मिलकर ही चलो। **संस्म**=मिलकर होते हुए तुम दोनों **यमराज्येषु**=संयमी पुरुष के शासनवाले इस गृहस्थरूप राज्य में **समेतम्**=मिलकर चलो। पति-पत्नी की सब लौकिक क्रियाएँ धर्म-सम्बन्धी कार्य तथा गृहस्थरूप के कार्य मिलकर अविरोध से हों। २. **यत् यत्**=जब-जब **वां रेतः**=तुम दोनों का वीर्य **अधिसंबभूव**=गर्भ में एकत्र होकर पुत्ररूप से स्थिर हो जाए, तब **पवित्रैः पूतौ**=पवित्र कार्यों से पवित्र हुए-हुए तुम दोनों **तत् उपह्वयेथाम्**=उस गर्भस्थ सन्तान को पुकारो—उस गर्भस्थ सन्तान पर शुभ संस्कारों को डालने का प्रयत्न करो।

भावार्थ—(च) गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी मिलकर सब कार्यों को करें। (छ) जब सन्तान गर्भस्थ हों तब स्वयं पवित्र हुए-हुए अपने शुभ कार्यों से उन सन्तानों पर भी शुभ-संस्कार डालने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

कर्त्तव्य परायणता

आप॑स्पुत्रासो अ॒भि सं वि॑शध्वमि॒मं जी॒वं जी॑वधन्याः स॒मेत्य॑।
तासा॑ भजध्वम॒मृतं॒ यमा॒हुर्यमो॑द॒नं पच॑ति वां॒ जनि॑त्री॥ ४॥

१. **आपस्पुत्रासः**=(आप् व्याप्तौ) हे सर्वव्यापक प्रभु के पुत्रो! **जीवधन्याः**=सन्तान के द्वारा धन्य जीवनवाले तुम **इमं जीवं समेत्य**=इस सन्तान को प्राप्त करके **अभिसंविशध्वम्**=अपने कर्त्तव्य-कर्मों में सम्यक् प्रविष्ट (संलग्न) हो जाओ। कर्त्तव्य-कर्मों में लगे रहने से ही वह उत्तम वातावरण बनता है, जिसमें सन्तानों का जीवन उत्तम होता है। २. **तासाम्**=उन सन्तानों के **यं अमृतं आहुः**=जिसको न मरने देनेवाला कहते हैं, उस ओदन का **भजध्वम्**=सेवन करो। वस्तुतः उत्तम भोजन से उत्तम वीर्य का निर्माण होकर सन्तान भी उत्तम होते हैं। भोजन का दोष सन्तानों को भी प्रभावित करता ही है। उस भोजन को खाओ **यं ओदनम्**=जिस भोजन को **वां जनित्री**=तुम्हें जन्म देनेवाली यह प्रकृतिमाता **पचति**=परिपक्व करती है, अर्थात् तुम वानस्पतिक पदार्थों का ही सेवन करो। ये पदार्थ तुम्हें अमृतत्व—नीरोगता प्राप्त कराएँगे।

भावार्थ—(क) उत्तम सन्तानों को प्राप्त करके हम कर्त्तव्य-कर्मों में लगे रहने के द्वारा उस उत्तम वातावरण को पैदा करें, जिसमें सन्तानों का निर्माण ठीक ही हो। (ख) साथ ही प्रकृति से प्रदत्त अन्न व फलों का सेवन करते हुए अमृतत्व (नीरोगता) को प्राप्त करें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

वानस्पतिक भोजन

यं वां॑ पि॒ता पच॑ति॒ यं च॑ मा॒ता रि॒प्रान्निर्मु॑क्त्यै॒ शम॑लाच्च वा॒चः।
स ओ॑द॒नः श॒तधा॑रः स्व॒र्ग उ॒भे व्या ऽप॒ नभ॑सी महि॒त्वा॥ ५॥

१. ('द्यौष्पिता पृथिवी माता') द्युलोक से वृष्टि होकर पृथिवी में अन्न उत्पन्न होता है। इस अन्नोत्पत्ति में द्युलोक 'पिता' है तो पृथिवी 'माता' है। इस अन्न से ही हमारा जीवन धारित होता है। एवं द्युलोक हमारा पिता है तो पृथिवी माता है। **यम्**=जिस अन्न को **वाम्**=दोनों **पिता**=वह द्युलोकरूप पिता **पचति**=पकाता है, **च**=और **यं माता**=जिस ओदन को यह भूमिमाता उत्पन्न करती है, वह ओदन **रिप्रान् निर्मुक्त्यै**=सब रोगरूप दोषों से छुटकारे के लिए है, **च**=और यह अन्न **वाचः शमलात्**=(शम् अल=वारण) वाणी के अशान्त शब्दों के निवारण के लिए है। इन सात्त्विक अन्नों का सेवन करने पर—मांसाहार से दूर रहने पर हम नीरोग भी होंगे और क्रोध में अशान्त शब्दों का प्रयोग भी न करेंगे। २. **सः ओदनः**=वह द्युलोक व पृथिवी से (पिता व माता से) दिया हुआ भोजन **शतधारः**=हमें सौ वर्ष तक धारण करनेवाला है, **स्वर्गः**=हमें सुखमय—प्रकाशमयलोक में प्राप्त करानेवाला है। यह ओदन **महित्वा**=अपनी महिमा से **उभे नभसी व्याप**=दोनों लोकों को—पृथिवी व द्युलोक को व्याप्त करनेवाला है। पृथिवी 'शरीर' है, द्युलोक 'मस्तिष्क' है। यह सात्त्विक वानस्पतिक अन्न 'शरीर व मस्तिष्क' दोनों को ही ठीक बनाता है। इससे शरीर नीरोग रहता है तथा मस्तिष्क दीप्त बनता है। मांसभोजन रोगों व क्रूर छल-कपटमयी प्रवृत्तियों को पैदा करता है।

भावार्थ—हम वानस्पतिक भोजनों का ही सेवन करें। यह भोजन हमारे जीवनों को निर्दोष बनाएगा, दीर्घजीवन का साधन बनेगा, जीवन को सुखी व प्रकाशमय करेगा तथा शरीर को शक्तिसम्पन्न करता हुआ मस्तिष्क को दीप्ति-सम्पन्न करेगा।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

स्वर्ग (ज्योतिष्मान्+मधुमान्)

उभे नभसी उभयांश्च लोकान्ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः।
तेषां ज्योतिष्मान्मधुमान्यो अग्रे तस्मिन्पुत्रैर्जरसि सं श्रयेथाम्॥ ६॥

१. हे पति-पत्नी! गतमन्त्र के अनुसार वानस्पतिक भोजनों का ही प्रयोग करते हुए तुम **उभे नभसी**=दोनों लोकों को—द्यावापृथिवी को—मस्तिष्क व शरीर को **संश्रयेथाम्**=सम्यक् प्राप्त करनेवाले बनो। भोजन से तुम्हारा शरीर शक्ति को तथा मस्तिष्क दीप्ति को प्राप्त करेगा **च**=और इस भोजन से तुम **उभयान् लोकान्**=दोनों लोकों को—अपने बड़े वृद्ध माता-पिता को तथा छोटे सन्तानों को सेवित करनेवाले बनो। बड़ों का आदर करो तथा छोटों का निर्माण करने के लिए यत्नशील होओ। मांसाहार हमें स्वार्थी-सा बनाकर इन वृत्तियों से दूर करता है। २. **ये**=जो **यज्वनाम् अभिजिताः**=यज्ञशील पुरुषों से जीते गये **स्वर्गाः**=प्रकाशमय व सुखमय लोक हैं, **तेषाम्**=उनमें भी **यः**=जो **अग्रे**=सर्वप्रथम **ज्योतिष्मान् मधुमान्**=ज्योति व माधुर्यवाला लोक है, **तस्मिन्**=उस लोक में **पुत्रैः**=अपने सन्तानों के साथ **जरसि**=(संश्रयेथाम्) पूर्ण वृद्धावस्था में प्रभुस्मरणपूर्वक आश्रय करनेवाले होओ। तुम्हारा घर स्वर्ग हो—प्रकाश व माधुर्य से पूर्ण हो—यहाँ दीर्घजीवनवाले तुम अपने सन्तानों के साथ आनन्दपूर्वक रहो।

भावार्थ—सात्त्विक अन्नों के सेवन के परिणामस्वरूप हमारे मस्तिष्क व शरीर दीप्त व शक्त हों। हमारे घरों में बड़ों का आदर व छोटों का प्रेमपूर्वक निर्माण हो। हमारा घर यज्ञशील पुरुषों का वह श्रेष्ठ स्वर्ग बने, जिसमें ज्योति व माधुर्य का व्यापन हो। इस स्वर्ग में हम दीर्घकाल तक पुत्रों के साथ, प्रभुस्मरणपूर्वक (जरसि=स्तुतौ) निवास करें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

श्रद्धापूर्वक आगे और आगे

प्राचींप्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते।
यद्वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दम्पती सं श्रयेथाम्॥ ७॥

१. हे **दम्पती**=पति-पत्नी! आप दोनों **प्राचीं प्राचीं प्रदिशम्**=आगे और आगे बढ़ने की प्रकृष्ट दिशा को **आरभेथाम्**=पहुँचनेवाले बनो (reach)। आपका कदम आगे की दिशा में ही बढ़े। निरन्तर उन्नतिपथ पर आप चलनेवाले बनो। **एतं लोकम्**=इस लोक को—इस उन्नति की दिशा को **श्रद्दधानाः सचन्ते**=श्रद्धामय पुरुष ही प्राप्त करते हैं। इस दिशा में प्रगति आसन नहीं होती—श्रद्धा से चलते चलना ही इस दिशा का मूलमन्त्र है। २. **यत्**=जो **वाम्**=आप दोनों का **पक्वम्**=घर में भोजन परिपक्व हुआ है, और **अग्नौ परिविष्टम्**=अग्नि में जिसका परिवेषण हुआ है, अर्थात् अग्नि में जिसकी आहुति दी गई है, **तस्य गुप्तये**=उसके रक्षण के लिए तुम **संश्रयेथाम्**=मिलकर प्रभु का सेवन करो। घर में मिलकर प्रभु की उपासना से उत्तम प्रवृत्तियाँ बनी रहती हैं। ऐसे घरों में यज्ञादि उत्तम कर्मों का लोप नहीं होता।

भावार्थ—हम श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ने की दिशा में चलें। यज्ञशेष को खानेवाले बनें। उत्तमकर्मों की प्रवृत्ति के अविच्छेद के लिए मिलकर प्रभु का उपासन करें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

दाक्षिण्य व प्रभुस्मरण

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्।
तस्मिन्वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म बहुलं नि यच्छात्॥ ८॥

१. अब **दक्षिणां दिशम् अभि**=दाक्षिण्य (नैपुण्य) की दिशा की ओर **नक्षमाणौ**=गति करते हुए तुम दोनों (पति-पत्नी) **एतत् पात्रम् अभि पर्यावर्तेथाम्**=इस रक्षक प्रभु की ओर फिर-फिर लौटते हुए **वाम्**=तुम दोनों को **यमः**=वह सर्वनियन्ता प्रभु **पितृभिः संविदानः**=पितरों के द्वारा संज्ञान को प्राप्त कराता हुआ **पक्वाय**=ज्ञान में परिपक्व हुए-हुए के लिए **बहुलं शर्म नियच्छात्**=बहुत ही सुख प्राप्त कराए। प्रभु उपासक को ज्ञान प्राप्त कराने का प्रबन्ध करते हैं। जो भी ज्ञान प्राप्त करता है, उसे वे सुखी करते हैं।

भावार्थ—हम दाक्षिण्य को प्राप्त करने पर प्रभु को न भूलें। अन्यथा इस दाक्षिण्य से प्राप्त ऐश्वर्य हमारे पतन का कारण बन जाएगा। प्रभु का स्मरण होने पर प्रभु हमें पितरों द्वारा ज्ञान प्राप्त कराते हैं और ज्ञान परिपक्व व्यक्ति के लिए वे सुख देनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

प्रत्याहार की श्रेष्ठ दिशा

प्रतीचीं दिशामियमिद्वरं यस्यां सोमो अधिपा मृडिता च।
तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः॥ ९॥

१. **इयं प्रतीची**=(प्रति अञ्च्) यह प्रत्याहार—इन्द्रियों को विषयों से वापस लाने की दिशा ही **दिशाम् इत् वरम्**=दिशाओं में निश्चय से श्रेष्ठ है। जीवन में सर्वाधिक महत्त्व इस बात का है कि हम इन्द्रियों को विषयों में न फँसने दें। यह प्रत्याहार की दिशा वह है **यस्याम्**=जिसमें **सोमः**=वे शान्त प्रभु **अधिपाः**=रक्षक हैं, **च मृडिता**=और सुखी करनेवाले हैं। प्रभु का रक्षण व अनुग्रह (आनन्द) उसी को प्राप्त होता है जो प्रत्याहार का पाठ पढ़ता है। २. अतः हे दम्पती!

तस्यां श्रयेथाम्=उस प्रत्याहार की दिशा में ही आश्रय करो, **सुकृतः सचेथाम्**=पुण्यकर्मा लोगों से ही मेल करो—उन्हीं के संग में उठो-बैठो। **अधा**=अब **पक्वात्**=वीर्य का ठीक परिपाक होने से ही **मिथुनां संभवाथः**=मिलकर सन्तान को जन्म देनेवाले बनो। तुम विलास का शिकार न होकर इसे एक पवित्र कार्य जानो। इस पवित्रता के लिए प्रत्याहार की कितनी आवश्यकता है?

भावार्थ—ऐश्वर्य को प्राप्त करके भी इन्द्रियों को विषयासक्त न होने देना—उन्हें विषय व्यावृत्त करना ही पवित्रतम कार्य है। ऐसा होने पर ही प्रभु का रक्षण व अनुग्रह प्राप्त होता है। पति-पत्नी जितेन्द्रिय बनकर सन्तानोत्पत्ति के लिए ही परस्पर मेलवाले हों।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजया उत्तरावत्

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद्दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम्।
पाङ्क्तः छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं भवेम॥ १०॥

१. **उत्तरं राष्ट्रम्**=एक उत्कृष्ट राष्ट्र **प्रजया उत्तरावत्**=उत्तम प्रजा से अधिक उत्कर्षवाला बनता है। वस्तुतः राष्ट्र-व्यवस्था ठीक होने पर ही राष्ट्र में उत्तम सन्तान होते हैं और वे उत्तम सन्तान राष्ट्र के और अधिक उत्कर्ष का कारण बनते हैं। यह **दिशाम् उदीची**=दिशाओं में उत्तर दिशा (उत् अञ्च) हमें ऊपर उठने की प्रेरणा देती हुई **नः अग्रं कृण्वत्**=हमारी अग्रगति—उन्नति का कारण बने। २. इस उत्कृष्ट राष्ट्र में, उत्तर दिशा से ऊपर उठने की प्रेरणा लेता हुआ **पुरुषः**=पुरुष **पांक्तं छन्दः**=पाँच रूपोंवाला (छन्द् Appearance, look, shape) **बभूव**=होता है। इसके शरीर का निर्माण करनेवाले 'पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश' रूप पाँचों भूत इसके अनुकूल होते हैं और परिणामतः यह स्वस्थ शरीरवाला होता है। इस शरीर में पञ्चधा विभक्त प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) ठीक कार्य करता है। प्राणशक्ति के ठीक होने से पाँचों कर्मेन्द्रियाँ व पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से करती हैं और 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार व हृदय' इन पाँच भागों में विभक्त अन्तःकरण भी पवित्र बना रहता है। ये ही इस पांक्त पुरुष के पाँचरूप (छन्द) है। ऐसा होने पर **विश्वैः**=सब तथा **विश्वांगैः सह**=पूर्ण अंगों के साथ हम **संभवेम**=पुत्ररूप में जन्म लेनेवाले बनें। '**तद्धिजायायाः जायात्वं यदस्यां जायते पुनः**'=अपनी जाया में पति ही पुत्ररूप से जन्म लेता है, अतः यदि उसके सब अंग ठीक होंगे तो सन्तान भी तदनुरूप ही होंगे। उत्तम सन्तानों से राष्ट्र उत्तम बनेगा।

भावार्थ—उत्तर दिशा हमें उन्नति की प्रेरणा देती है। स्वयं अपने पाँचों रूपों को ठीक रखते हुए हम उत्कृष्ट प्रजा को जन्म दें, उससे हमारा राष्ट्र और अधिक उन्नत हो।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ध्रुवता

ध्रुवेयं विराण्नमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इयंइव गोपा अभि रक्ष पक्वम्॥ ११॥

१. **इयं ध्रुवा**=यह ध्रुवादिक् **विराट्**=विशिष्ट ही दीप्तिवाली है—ध्रुवता में ही इसकी शोभा है। **अस्यै नमः अस्तु**=इसके लिए नमस्कार हो। इस ध्रुवादिक से हम भी ध्रुवता का पाठ पढ़ते हैं। इसप्रकार ध्रुवता—स्थिरता का पाठ पढ़ाती हुई यह **पुत्रेभ्यः**=हमारे सन्तानों के लिए **उत**=और **मह्यम्**=मेरे लिए **शिवा अस्तु**=कल्याणकर हो। अस्थिरता में कोई भी उन्नति सम्भव नहीं होती। सब उत्कर्ष इस ध्रुवता से ही प्राप्य हैं। २. हे **देवि**=दिव्यगुणों को प्राप्त करानेवाली, **अदिते**=स्वास्थ्य

को न नष्ट होने देनेवाली (अ+दिति, दो अवखण्डने) **विश्ववारे**=सबसे वरने योग्य ध्रुवादिक् **सा**=वह तू **नः**=हमारे लिए **इर्यः इव**=(Destroying the enemies) सब शत्रुओं को नष्ट करनेवाली है। **गोपाः**=तू हमारा रक्षण करती है। तू **पक्वम् अभिरक्ष**=हमारे अन्दर परिपक्व वीर्य का रक्षण करनेवाली हो। स्थिरवृत्ति में ही वीर्यरक्षण सम्भव है।

भावार्थ—हम ध्रुवा दिक् से ध्रुवता का पाठ पढ़ें। यह ध्रुवता हमारा कल्याण करे। यह 'दिव्यगुणों को प्राप्त करानेवाली व स्वास्थ्य को सुरक्षित रखनेवाली है'। यह हमारे शत्रुओं को नष्ट करके हमारा रक्षण करती है। यह ध्रुवता की वृत्ति हमारे शरीरों में वीर्य का भी रक्षण करनेवाली है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**जगती**॥

प्रभु से आलिङ्गन

पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व नः शिवा नो वाता इह वान्तु भूमौ।
यमोदनं पचतो देवते इह तन्नस्तपत उत सत्यं च वेत्तु॥ १२॥

१. हे प्रभो! प्राची आदि दिशाओं से उत्तम पाठों को पढ़नेवाले **नः**=हमें आप इस प्रकार **अभिसंस्वजस्व**=आलिंगन कीजिए, **इव**=जैसेकि **पिता पुत्रान्**=पिता पुत्र का आलिंगन करता है। आपका अनुग्रह होने पर **इह भूमौ**=यहाँ पृथिवी पर **नः**=हमारे लिए **शिवाः वाताः वान्तु**=कल्याणकर वायुएँ बहें—सारा आधिदैविक जगत् हमारे अनुकूल हो। २. **यम् ओदनम्**=जिस भोजन को **इह**=यहाँ **देवते पचतः**=द्युलोकरूप पिता तथा पृथिवीरूप माता हमारे लिए पकाते हैं, **तम्**=उस ओदन को **नः**=हमारा **तपः**=तप **सत्यं च**=और सत्य **वेत्तु**=जाने, अर्थात् उस भोजन के सेवन से हम तपस्वी व सत्यवादी बनें। यह भोजन हमारे शरीर में तप व मन में सत्य का स्थापन करे।

भावार्थ—हम प्रभु आलिंगन प्राप्त करें, तब सम्पूर्ण आधिदैविक जगत् हमारे अनुकूल होगा। द्युलोक व पृथिवी से प्रदत्त सात्त्विक अन्नों का सेवन करते हुए हम तपस्वी व सत्यवादी बनें।

ऋषिः—यमः॥ देवता—स्वर्गः, ओदनः, अग्निः॥ छन्दः—स्वराडार्षीपङ्क्तिः॥

शोधन (नीरोगता के लिए)

यद्यत्कृष्णः शकुन एह गत्वा त्सरन्विषक्तं बिलं आससाद।
यद्वा दास्या३र्द्रहस्ता समङ्क्त उलूखलं मुसलं शुम्भतापः॥ १३॥

१. **यत् यत्**=जब तक **कृष्णः शकुनः**=यह कृष्ण वर्ण का पक्षी (कौवा) **इह**=यहाँ **आ गत्वा**=आकर **त्सरन्**=टेढ़ी चालें चलता हुआ **विषक्तम्**=जमकर **बिले**=किसी बिल में—आले आदि में **आससाद**=बैठ जाए **यत् वा**=अथवा जब **दासी**=घर में बर्तन आदि साफ़ करनेवाली कार्यकर्त्री **आर्द्रहस्ता**=कार्य करते समय उन्हीं गीले हाथों से **उलूखलं मुसलम्**=ऊखल व मूसल को **समङ्क्ते**=(smear with) लिथेड़ देती है—अपवित्र कर देती है तब **आपः**=हे जलो! **शुम्भत**=उस स्थान को व ऊखल-मूसल को तुम शुद्ध कर दो।

भावार्थ—घर में कौवा आदि पक्षी कुछ अपवित्र कर दें, अथवा कोई कार्यकर्त्री ऊखल-मूसल आदि को मलिनता से लिप्त कर दे तो उसका जलों से सम्यक् शोधन कर लेना आवश्यक है, अन्यथा रोग आदि के फैलने की आशंका बढ़ जाती है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'पवित्रैः पूतः' ग्रावा

अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः पूतः पवित्रैरप हन्तु रक्षः।
आ रोह चर्म महि शर्म यच्छ मा दम्पती पौत्रमघं नि गाताम्॥ १४॥

१. **अयम्**=यह **ग्रावा**=(गृणाति) स्तुतिवचनों का उच्चारण करनेवाला **पृथुबुध्नः**=विशाल ज्ञान के आधारवाला (बुध्), **वयोधाः**=प्रकृष्ट जीवन को धारण करनेवाला, **पवित्रैः पूतः**=(नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते) ज्ञानों के द्वारा पवित्र जीवनवाला बना हुआ व्यक्ति (यम) **रक्षः अपहन्तु**=राक्षसी-वृत्तियों को अपने से दूर करे। प्रभुस्तवन करते हुए हम ज्ञान को अपने जीवन का आधार बनाएँ। यह ज्ञान हमें पवित्र व उत्कृष्ट जीवनवाला बनाए। हमारे जीवन में राक्षसीभाव न जमा हो जाएँ। २. हे साधक! तू **चर्म**=जीवन की ढाल के रूप में काम करनेवाले वीर्य के दृष्टिकोण से **आरोह**=उन्नत होने का प्रयत्न कर। वीर्य की ऊर्ध्वागति को सिद्ध कर। **महि शर्म यच्छ**=इस प्रकार घर में सभी को सुख देनेवाला बन। इस वीर्यरक्षण व संयत जीवन के द्वारा **दम्पती**=पति-पत्नी **पौत्रम् अघम्**=पुत्र-सम्बन्धी कष्ट को **मा निगाताम्**=प्राप्त न हों। वीर्यरक्षण व संयमवाले पति-पत्नी दीर्घजीवी व विधेय सन्तानों को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—पति-पत्नी में 'प्रभुस्तवन, ज्ञानरुचिता, संयम व वीर्यरक्षण' की भावना होने पर सन्तान उत्तम होते हैं।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वानस्पतिक भोजन का महत्त्व

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः।
स उच्छ्रयाते प्र वदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वाञ्जयेम॥ १५॥

१. **वनस्पतिः**=पवित्र वानस्पतिक भोजन **देवैः सह**=दिव्यगुणों के साथ **नः आगन्**=हमें प्राप्त हो। हम वानस्पतिक भोजन ही करें। इस प्रकार मांसाहार से आ जानेवाली स्वार्थ व क्रूरता आदि की वृत्तियों से बचे रहें। यह भोजन **रक्षः**=रोगकृमियों को **पिशाचान्**=पैशाचिक वृत्तियों को **अपबाधमानः**=हमसे दूर रक्खे। २. **सः**=वानस्पतिक भोजन करनेवाला वह 'यम' (संयमी पुरुष) **उच्छ्रयाते**=उत्कृष्ट मार्ग का सेवन करता है। यह **वाचं प्रददाति**=स्तुतिवचनों का उच्चारण करता है। **तेन**=इस प्रकार की वृत्ति के द्वारा **सर्वान् लोकान् अभिजयेम**=हम सब लोकों का विजय करनेवाले बनें। पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक व द्युलोक का विजय करते हुए ब्रह्मलोक को प्राप्त करें।

भावार्थ—वानस्पतिक भोजन हमें दिव्यवृत्तिवाला बनाता है—राक्षसीभावों को दूर करता है। हम उत्कृष्ट जीवनवाले बनकर प्रभुस्तवन की वृत्तिवाले बनते हैं और सब लोकों का विजय करते हुए ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सप्तमेध परिग्रह व स्वर्गलोक

सप्त मेधान्पशवः पर्यगृह्णन्य एषां ज्योतिष्माँ उत यश्चकर्श।
त्रयस्त्रिंशद्देवतास्तान्त्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष लोकम्॥ १६॥

१. **पशवः**=(पश्यन्ति) देखनेवाले—विचारशील पुरुषों में **सप्तमेधान्**=(सप्तर्षिभिः साध्यान् मेधान् सप्त मेधान्) 'कर्णाविमौ, नासिके, चक्षणी, मुखम्' दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें

व मुखरूप सप्तर्षियों से साध्य यज्ञों का **पर्यगृह्णन्**=परिग्रह किया है (येन यज्ञस्तायते सप्तहोता) **तान्**=उनको **त्रयस्त्रिंशद्**=तेतीस **देवता सचन्ते**=देव प्राप्त होते हैं—'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक' में स्थित ग्यारह-ग्यारह—सब तेतीस देव इनके शरीर में निवास करते हैं (सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते)। इनके शरीर में सब देवों की सुस्थिति होती है—सब दिव्यगुण इन्हें प्राप्त होते हैं। २. **यः**=जो **एषाम्**=इनमें **ज्योतिष्मान्**=सर्वाधिक ज्योतिवाला है (तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्), **उत**=और **यः**=जो **चकर्श**=सूक्ष्मतम है, **सः**=वह सर्वज्ञ सूक्ष्मतम (निराकार) प्रभु **नः**=हमें **स्वर्गं लोकम् अभिनेष**=स्वर्गलोक की ओर ले-चलता है—हमें घरों को स्वर्गतुल्य बनाने की शक्ति प्रदान करता है।

भावार्थ—हम यज्ञों को अपनाएँगे तो दिव्यगुणों को प्राप्त करते हुए स्वर्ग को प्राप्त करनेवाले होंगे।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**स्वराडार्षीपङ्क्तिः**॥

न अलक्ष्मी, न कृपणता

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम।
गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः॥ १७॥

१. हे प्रभो! आप **नः**=हमें **स्वर्गं लोकम् अभि**=स्वर्गलोक की ओर **नयासि**=ले-चलते हो। आप हमें ऐसी शक्ति प्राप्त कराते हो कि हम अपने घर को स्वर्गलोक बना पाते हैं। हम **जायया सह**=अपनी पत्नी के साथ **स्याम**=हों तथा **पुत्रैः सं (स्याम)**=पुत्रों के साथ संगत हों। सदा पत्नी के साथ सम्यक् धर्म का पालन करते हुए उत्तम पुत्रों को प्राप्त करें। २. हे प्रभो! **हस्तम् गृह्णामि**=जिस भी साथी का हाथ में पकड़ता हूँ—जिस भी युवति के साथ मेरा पाणिग्रहण होता है—**अनु मा एतु**=वह सदा अनुकूलता से मेरा अनुगमन करनेवाली हो। **अत्र**=इस गृहस्थ में, इस प्रकार अनुकूलता के होने पर **नः**=हमें **निर्ऋतिः**=अलक्ष्मी **मा तारीत्**=अभिभूत न करे (तॄ अभिभवे), **उ**=और **अरातिः**=अदान की वृत्ति भी **मा (तारीत्)**=अभिभूत करनेवाली न हो। न तो हमारे घर में अलक्ष्मी का राज्य हो, न ही कृपणता का।

भावार्थ—हम घर को स्वर्ग बना पाएँ। पत्नी व पुत्रों के साथ सदा प्रेम से रहें। पति-पत्नी की अनुकूलता हो। अलक्ष्मी व कृपणता का हमारे यहाँ निवास न हो।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'ग्राहिं पाप्मानम्' अति

ग्राहिं पाप्मानमति ताँ अयाम तमो व्य स्य प्र वदासि वल्गु।
वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देवयन्तम्॥ १८॥

१. जीव प्रार्थना करता है कि **ग्राहिम्**=शरीर को जकड़ लेनेवाले गठिया आदि रोगों को तथा **पाप्मानम्**=पापवृत्ति को, **तान्**=उन सब अशुभों को **अति अयाम**=हम लाँघ जाएँ। प्रभु इस प्रार्थना का उत्तर देते हुए कहते हैं कि (क) **तमः व्यस्य**=अन्धकार को दूर करके **वल्गु प्रवदासि**=तू सुन्दर शब्दों को ही बोलनेवाला बन। (ख) **वानस्पत्यः**=वनस्पतियों का ही सेवन करनेवाला तू सदा **उद्यतः**=कर्त्तव्यकर्मों के पालन में उद्यत रह। (ग) **मा जिहिंसीः**=हिंसा करनेवाला न बन। (घ) **देवयन्तम् तण्डुलम्**=तुझे देव बनाने की कामना करते हुए इस तण्डुल को—व्रीहि को **मा विशरीः**=शीर्ण मत कर, तेरे घर में यह तण्डुल सदा संचित रहे। यह तुझे देववृत्ति का बनानेवाला हो।

भावार्थ—हम प्रभु के इन उपदेशों को न भूलें (क) ज्ञान की वृद्धि करते हुए हम सुन्दर शब्द बोलें (ख) शाकभोजी बनकर कर्त्तव्यकर्मों में लगे रहें। (ग) अहिंसावृत्तिवाले हों (घ) दिव्यता प्राप्त करानेवाले व्रीहि आदि भोजनों का ही प्रयोग करें। ऐसा करने पर हम रोगों व पापों से बचे रहेंगे।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

विश्वव्यचाः+घृतपृष्ठः

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्येतम्।
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद्विनक्तु ॥ १९ ॥

१. **विश्वव्यचाः**=सब गुणों व शक्तियों के विस्तारवाला तथा **घृतपृष्ठः**=ज्ञानदीप्ति को अपने में सींचनेवाला **भविष्यन्**=होना चाहता हुआ तू **सयोनिः**=उस प्रभु के साथ समान गृहवाला होता हुआ, अर्थात् हृदय में प्रभु के साथ निवास करता हुआ **एतं लोकम् उपयाहि**=इस लोक को प्राप्त हो—प्रभुस्मरणपूर्वक संसार में विचरनेवाला। यह प्रभुस्मरण ही तुझे इस संसार में आसक्त होने से बचाकर सुरक्षित शक्तिवाला व दीप्त ज्ञानवाला बनाएगा। २. इसी उद्देश्य से तू **वर्षवृद्धम्**= वरणीय गुणों से (वृ वरणे) व वर्षों से बढ़े हुए (बड़ी उमरवाले अनुभवी) **शूर्पम्**= छाज के समान इस पुरुष को **उपयच्छ**=अपने को दे डाल—इस पुरुष के प्रति अपना अर्पण कर जिससे जो कुछ **तुषम्**=भूसा है तथा **पलावान्**=तिनके आदि हैं **तत्**=उसे **अपविनक्तु**=वह दूर कर दे—पृथक् कर दे। वह वरणीय गुणोंवाला वृद्ध पुरुष तेरे अवगुणों को दूर करनेवाला हो।

भावार्थ—यदि हम प्रभु-स्मरणपूर्वक इस संसार में विचरेंगे तो अनासक्ति के द्वारा हम सब शक्तियों के विस्तारवाले व दीप्त ज्ञानवाले बनेंगे। गुणी वृद्ध पुरुषों के सम्पर्क में अपने सभी दोषों को दूर करने में समर्थ होंगे।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ब्राह्मण कौन ?

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यन्तरिक्षम्।
अंशून्गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु शूर्पम् ॥ २० ॥

१. **ब्राह्मणेन**=ब्रह्मज्ञानी पुरुष ने **त्रयः लोकाः**=तीनों लोक—**द्यौः एव असौ, पृथिवी, अन्तरिक्षम्**='निश्चय से द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी' **संमिताः**=सम्यक् निर्मित किये हैं। इसने अपने मस्तिष्करूप द्युलोक को ज्ञानसूर्य से दीप्त किया है, हृदयान्तरिक्ष को चन्द्र की शीतल ज्योत्स्ना से आनन्दमय बनाया है तथा पृथिवीरूप शरीर को शक्ति की अग्नि से युक्त किया है। २. हे पति-पत्नी! तुम भी **अंशून् गृभीत्वा**=इस ब्रह्मज्ञानी से ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करके **अन्वारभेथाम्**=अपने कर्त्तव्यकर्मों का आरम्भ करो। इसप्रकार ही सब गुण **आप्यायन्ताम्**=तुम्हारे अन्दर बढ़ें और **पुनः**=फिर-फिर **शूर्पम्**=इस छाजरूप वृद्ध ब्राह्मण के समीप **आयन्तु**=तुम आओ और अपने जीवन के दोषरूप अज्ञान को अपने से पृथक् करनेवाले बनो।

भावार्थ—ब्राह्मण वह है जोकि अपने शरीर, मन व मस्तिष्क को सुन्दर बनाता है। इसके सम्पर्क में ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करके मनुष्य अपने कर्त्तव्य कर्मों को करे। इन ब्राह्मणों के सम्पर्क में हम दोषों को दूर करते हुए निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हों।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

एकरसता

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्ध्या।
एतां त्वचं लोहिनीं तां नुदस्व ग्रावा शुम्भाति मलगइव वस्त्रा॥ २१॥

१. इस संसार में **बहुधा**=(Generally) बहुत प्रकार से—प्रायः **पशूनाम्**=प्राणियों के—पशुतुल्य भोगप्रधान जीवन बितानेवाले मनुष्यों के **रूपाणि पृथक्**=रूप अलग-अलग होते हैं। वे स्थिरवृत्ति के नहीं होते। ये एकरूप से ऊबकर दूसरे की ओर और उससे ऊबकर तीसरे की ओर चलते हैं। गतमन्त्र में वर्णित हे ब्राह्मण! तू **संसमृद्ध्या**=ज्ञान व गुणों की सम्यक् समृद्धि के कारण **एकरूपः भवसि**=एकरूप होता है—तू जीवन में स्थिरवृत्ति का बनता है। २. **एताम्**=इस और **ताम्**=उन सामान्य लोगों के द्वारा अपनायी जानेवाली **लोहिनीं त्वचम्**=लोहित वर्ण की त्वचा हमें सक्त कर डालती है—विविधरूपों की ओर तेरा आकर्षण होता है। **ग्रावा**=यह प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण करनेवाला पुरुष **शुम्भति**=अपने जीवन को इसप्रकार शुद्ध कर डालता है, **इव**=जैसेकि **मलगः वस्त्रा**=मल को दूर करनेवाला धोबी वस्त्रों को शुद्ध किया करता है।

भावार्थ—प्रायः लोग एकरसता की ओर झुकाववाले नहीं होते। वे विविध व्यञ्जनों व विविध वस्त्रों से सदा आकृष्ट होते रहते हैं। एक सच्चा ब्राह्मण इस राजसी वृत्ति को दूर करके एकरस होने का प्रयत्न करता है। यह प्रभुस्तवन करता हुआ अपने जीवन की मलिनताओं को इस प्रकार दूर कर देता है, जैसे धोबी वस्त्रों की मलिनता को।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**जगती** ॥

विकृत तनू का फिर से ठीक करना

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता त एषा।
यद्यद् द्युत्तं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्ब्रह्मणापि तद्वपामि॥ २२॥

१. प्रभु प्रजा से कहते हैं कि **पृथिवीं त्वा**=(प्रथ विस्तारे) शक्तियों के विस्तारवाली तुझको **पृथिव्याम् आवेशयामि**=सब प्रकार से (आ) शक्तियों के विस्तार में स्थापित करता हूँ। **एषा**=यह **ते**=तेरा **विकृता तनूः**=विकृत हुआ-हुआ शरीर **समानी**=(सम् अन् प्राणने) पुनः सम्यक् प्राणित हो उठता है। २. **अर्पणेन**=(ऋ हिंसायाम्) हिंसन से—किसी आघात व प्रहार आदि से **यत् यत्**=जो-जो **द्युत्तम्**=(प्रज्वलितम्) जल-सा उठा है, अथवा **लिखितम्**=अवदारित हुआ है, **तेन**=उससे **मा सुस्रोः**=तू स्रुत न हो जा—तेरा शरीर बह न जाए। **ब्राह्मणा**=ज्ञान से—ज्ञानपूर्वक किये गये उपाय से **तत्**=उस सबको **अपि वपामि**=(begets, produce, weave) फिर से ठीक कर देता हूँ—उसमें आ गई कमी को दूर कर देता हूँ।

भावार्थ—हमारी शक्तियों का विस्तार ठीक बना रहे। शरीर में जो विकार आ जाता है, वह दूर होकर शरीर पुनः ठीक से प्राणित हो उठे। जो-जो कुछ यहाँ जल जाए या अवदारित हो जाए, उसे ज्ञानपूर्वक ठीक किया जाए। प्रयत्न किया जाए कि उस आघात से रुधिर का बहुत स्राव न हो जाए।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

परस्पर स्नेह व यज्ञशीलता

जनित्रीव प्रति हर्यासि सूनुं सं त्वा दधामि पृथिवीं पृथिव्या।
उखा कुम्भी वेद्यां मा व्यथिष्ठा यज्ञायुधैराज्येनातिषक्ता॥ २३॥

१. प्रभु प्रजा से कहते हैं कि तू **प्रतिहर्यासि**=प्रत्येक के साथ इसप्रकार स्नेह करनेवाली हो, **इव**=जैसेकि **जनित्री सूनुम्**=माता पुत्र को प्रेम करती है। **पृथिवीं त्वा**=शक्तियों के विस्तारवाली तुझको **पृथिव्या**=शक्ति-विस्तार के साथ **संदधामि**=सम्यक् धारण करता हूँ। परस्पर प्रेम से वर्तना भी शक्तियों की स्थिरता का साधन बनता है। २. तू उसी प्रकार **मा व्यथिष्ठाः**=व्यथित न हो, जैसेकि **वेद्याम्**=वेदी में **यज्ञायुधैः**=यज्ञ के उपकरणों के साथ **आज्येन अतिषक्ता**=घृत से अतिशयेन मेलवाली **उखा**=कुण्ड व **कुम्भी**=जलपात्र पीड़ित न हों, अर्थात् तेरे घर में यज्ञ होते रहें और तेरा जीवन सर्वथा सुखमय बना रहे।

भावार्थ—हम परस्पर प्रेम से वरतें तथा हमारे घरों में यज्ञों की परिपाटी ठीक प्रकार से चलती रहे। इसप्रकार हमारी शक्तियाँ सुस्थिर रहेंगी और हमारा जीवन सुखमय बनेगा।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम'

अग्निः पचन्त्रक्षतु त्वा पुरस्तादिन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो मरुत्वान्।
वरुणस्त्वा दृंहाद्धरुणे प्रतीच्या उत्तरात्त्वा सोमः सं ददातै॥ २४॥

१. **पुरस्तात्**=पूर्व की ओर से **पचन् अग्निः**=तेरी शक्तियों का परिपाक करता हुआ अग्रणी प्रभु **त्वा रक्षतु**=तेरी रक्षा करे। प्रथमाश्रम में प्रभु को 'अग्नि' नाम से स्मरण करता हुआ निरन्तर आगे बढ़नेवाला बन और अपनी शक्तियों का ठीक से परिपाक कर। २. **मरुत्वान्**=मरुतों-(प्राणों)-वाला **इन्द्रः**=शत्रुविद्रावक सर्वैश्वर्यसम्पन्न प्रभु **दक्षिणतः रक्षतु**=दक्षिण की ओर से तेरी रक्षा करे। हम द्वितीयाश्रम में प्राणसाधना करते हुए जितेन्द्रिय बनकर दाक्षिण्य प्राप्त करें और ऐश्वर्य को सिद्ध करें। ३. **वरुणः**=सब पापों का निवारण करनेवाला प्रभु **प्रतीच्याः**=पश्चिम दिशा से **त्वा**=तुझे **धरुणे दृंहात्**=धारणात्मक कर्म में दृढ़ करे। अब वानप्रस्थाश्रम में हम प्रत्याहार का पाठ पढ़ते हुए (प्रति अञ्च) सब विषयों से अपना निवारण करें (वरुण) और चित्तवृत्ति को सुस्थिर करने का प्रयत्न करें (धरुण)। ४. अब **सोमः**=वे शान्त प्रभु **उत्तरात्**=उत्तर से **त्वा**=तुझे **संददातै**=सम्यक् प्रजा के लिए दें। चतुर्थाश्रम में संन्यस्त होकर हम उत्तम जीवनवाले शान्त (सोम) बनकर प्रजाहित में प्रवृत्त हों और सब लोगों के लिए ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—प्रथमाश्रम में हम ठीक प्रकार से शक्तियों का परिपाक करें। द्वितीयाश्रम में प्राणसाधना द्वारा जितेन्द्रिय बने रहकर विषयासक्त होने से बचें। तृतीयाश्रम में सब विषयों का निवारण करके स्थिरवृत्तिता का अभ्यास करें। चतुर्थाश्रम में शान्त व सौम्य बनकर सर्वत्र प्रकाश फैलाएँ।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

एक तुरीयाश्रमी का चित्रण

पूताः पवित्रैः पवन्ते अभ्रादिवं च यन्ति पृथिवीं च लोकान्।
ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः पात्र आसिक्ताः पर्यग्निरिन्धाम्॥ २५॥

१. गतमन्त्र में वर्णित चतुर्थाश्रम की प्रजाएँ **पवित्रैः पूताः**=(नहि ज्ञाने सदृशं पवित्रमिह विद्यते) पवित्रता के साधनभूत ज्ञान से पवित्र बने हुए **पवन्ते**=गतिशील होते हैं। **अभ्रात्**=(अभ्र गतौ) गतिशीलता के द्वारा **दिवं च यन्ति**=मास्तिष्करूप द्युलोक को प्राप्त करते हैं, **पृथिवीम्**=इस शरीररूप पृथिवीलोक को प्राप्त करते हैं **च**=और **लोकान्**=शरीर के अन्य अङ्ग-प्रत्यङ्गों को ठीक रख पाते हैं। २. **ताः**=उन तुरीयाश्रमी प्रजाओं को, जोकि **जीवलाः**=जीवनशक्ति से पूरिपूर्ण हैं, **जीवधन्या**=अपने जीवन को धन्य बनानेवाली **प्रतिष्ठाः**=स्थिरवृत्ति की हैं, **पात्रे आसिक्ताः**=(पात्रे

आसिक्तं येषाम्) शरीररूप पात्र में शक्ति का सेचन करनेवाली होती हैं—पूर्णरूप से जितेन्द्रिय होती हुई शक्ति का रक्षण करती हैं, उन्हें **अग्निः**=वे अग्रणी प्रभु **परि इन्धाम्**=सर्वतः दीप्त करनेवाले हों। प्रभुकृपा से इनका जीवन सर्वतः दीप्त=मलिनता से शून्य हो। इनका जीवन ही लोगों को प्रेरणा देनेवाला हो।

भावार्थ—एक संन्यस्त पुरुष ज्ञान से पवित्र जीवनवाला बनकर गतिशील होता है। गतिशीलता ही इसके मस्तिष्क, शरीर व सब अङ्गों को स्वस्थ रखती है। इन जीवनशक्ति से परिपूर्ण, धन्य जीवनवाले, स्थिरवृत्ति के जितेन्द्रिय पुरुषों को प्रभु दीप्त जीवनवाला बनाते हैं।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शुद्धः शुम्भन्ते

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अध्यन्तरिक्षम्।
शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं नयन्तु॥ २६॥

१. गतमन्त्र में वर्णित संन्यस्त पुरुष **दिवः**=ज्ञान के प्रकाश से **आयन्ति**=समन्तात् गतिवाले होते हैं—ज्ञान के प्रकाश को फैलाने के लिए परिव्रजन करते हैं। **पृथिवीं सचन्ते**=इस शरीररूप पृथिवी के साथ मेलवाले होते हैं—शरीर को स्वस्थ रखते हैं। लोकहित के लिए भी शरीर को स्वस्थ रखना आवश्यक ही है। **भूम्याः**=(भू शुद्धौ) शोधन के दृष्टिकोण से **अन्तरिक्षम् अधिसचन्ते**=हृदयान्तिरक्ष का सेवन करते हैं, अर्थात् हृदयस्थ प्रभु का ध्यान करते हैं। यह प्रभु का ध्यान इनके जीवन को शुद्ध बनाए रखता है। २. **शुद्धा सतीः ताः**=स्वयं शुद्ध जीवनवाली होती हुई वे प्रभु की प्रजाएँ (वे प्रभु के संदेशहर) **उ**=निश्चय से **शुम्भन्ते एव**=अन्य लोगों के जीवनों को शुद्ध बनाती हैं। **ताः**=वे प्रभु के व्यक्ति अपने ज्ञानोपदेश द्वारा **नः**=हमें **स्वर्गं लोकम् अभि**=स्वर्गलोक की ओर **नयन्तु**=ले-चलें। इनकी ज्ञानवाणियाँ हमें इसप्रकार उत्तम कर्मों में प्रेरित करें कि हम अपने घरों को स्वर्ग बना सकें।

भावार्थ—संन्यस्त लोग (क) ज्ञान के साथ विचरते हैं, (ख) शरीर को स्वस्थ रखते हैं, (ग) हृदयस्थ प्रभु का ध्यान करते हुए जीवन को शुद्ध बनाते हैं, (घ) शुद्ध जीवनवाले होते हुए औरों को भी शुद्ध करते हैं, (ङ) ज्ञानोपदेश द्वारा उन्हें उस मार्ग पर ले-चलते हैं, जिससे वे अपने घरों को स्वर्ग-तुल्य बना पाते हैं।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

शुक्राः शुचयः अमृतासः

उतेव प्रभ्वीरुत संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः।
ता ओदनं दम्पतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः॥ २७॥

१. **उत**=और **प्रभ्वीः इव**=जैसी ये प्रजाएँ प्रकृष्ट सामर्थ्य-(प्रभाव)-वाली होती हैं, **उत**=और वैसी ही **संमितासः**=सम्यक् ज्ञानवाली भी होती हैं। शरीर में स्वस्थ, मस्तिष्क में दीप्त **उत**=और **शुक्राः**=वीर्यवान् होती हुई **शुचयः**=पवित्र मनवाली होती हैं, **च**=और **अमृतासः**=नीरोग शरीरवाली होती हैं। २. **ताः**=वे **प्रशिष्टाः आपः**=प्रकर्षेण शिष्ट (सुबोध) प्रजाएँ **शिक्षन्तीः**=उत्तम शिक्षण करती हुई तथा **सुनाथा**=उत्तम ज्ञानैश्वर्यवाली व उत्तम आशीर्वचनोंवाली होती हुई **दम्पतीभ्याम्**=गृहस्थ पति-पत्नी के लिए **ओदनं पचत**=उत्कृष्ट ज्ञानौदन का परिपाक करें—उन्हें ज्ञान देनेवाली हों।

भावार्थ—संन्यासी प्रभावजनक शरीरवाला व ज्ञानी हो। वीर्यवान् होता हुआ मन में पवित्र

व शरीर में नीरोग हो। ये अत्यन्त शिष्ट व आशीर्वचनोंवाले होते हुए उत्तम शिक्षण के द्वारा गृहस्थों के लिए ज्ञान के भोजन का परिपाक करें—उन्हें ज्ञान दें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

संख्याताः अपि असंख्याताः

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता ओषधीभिः।
असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्या ∫ पुः शुचयः शुचित्वम्॥ २८॥

१. **संख्याताः**=(चक्ष् ख्या to perceive) सत्य का दर्शन किये हुए, **स्तोकाः**=(ष्टुच् प्रसादे) प्रसन्नचित्तवाले ये संन्यस्त पुरुष=संन्यासी **पृथिवीं सचन्ते**=इस पृथिवी के साथ—पृथिवीस्थ प्राणियों के साथ मेलवाले होते हैं। ज्ञान देने के द्वारा उनके कल्याण के लिए यत्नशील होते हैं। ये संन्यस्त **प्राणापानैः**=प्राणापान की शक्तियों से तथा **ओषधीभिः**=ओषधियों से **संमिताः**=संमित—उपमित होते हैं। ये ही वस्तुतः राष्ट्र के प्राणापान—जीवन के रक्षक होते हैं तथा दोषों को दग्ध (उष दाहे) करनेवाले होते हैं। २. **असंख्याताः**=(संख्या to be connected with) किन्हीं के साथ भी अपने को सम्बद्ध न करते हुए ये **ओप्यमानाः**=चारों ओर ज्ञान को फैलाते हुए (ज्ञान का वपन करते हुए) **सुवर्णाः**=उत्तम रूप में प्रभु के गुणों का प्रतिपादन करते हुए **शुचयः**=पवित्र जीवनवाले **सर्वं शुचित्वम् व्यापुः**=पूर्ण पवित्रता का व्यापन करनेवाले होते हैं। पवित्रता को व्याप्त करनेवाले ये पुरुष ही 'आप्त' कहलाते हैं। इनके शब्द लोगों के लिए प्रमाणभूत होते हैं।

भावार्थ—संन्यस्त पुरुष 'सत्यदर्शी, सदा प्रसन्न, प्रजाओं के प्राण व दोषदग्धा' होते हैं। ये अनासक्त भाव से ज्ञान का प्रसार करते हैं। प्रभु के गुणों का सम्यक् प्रतिपादन करते हुए पवित्रता से व्याप्त जीवनवाले 'आप्त' पुरुष होते हैं।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून्।
योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्वियायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः॥ २९॥

१. प्राकृतजन तो **उद्योधन्ति**=परस्पर युद्ध करने लगते हैं, **अभिवल्गन्ति**=एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं, **तप्ताः**=क्रोधसंतप्त हुए-हुए **फेनम् अस्यन्ति**=ओष्ठप्रान्तों से आग को छोड़ते हैं, **च**=और **बहुलान् बिन्दून्**=कितनी ही थूक (ष्ठीवन) की बून्दें उनके मुख से गिरती हैं, अर्थात् ये प्राकृतजन क्रोध में उन्मत्त-से हो जाते हैं और भला करनेवाले पर भी आक्रमण कर बैठते हैं। २. ऐसा होने पर भी हे **आपः**=आप्त पुरुषो! आप **ऐतैः तण्डुलैः**=(तदि विध्वंसे) विध्वंसकारी पुरुषों के साथ भी इस प्रकार प्रेम से **सम्भवत**=मेलवाले होओ—इन्हें भी इसप्रकार प्रेम से ज्ञान देनेवाले बनो **इव**=जैसेकि **योषा**=पत्नी **पतिं दृष्ट्वा**=पति को देखकर **ऋत्वियाय**=ऋतु धर्म के लिए मेलवाली होती है। हे आप्त पुरुषो! इन विध्वंसकों को भी आप इसीप्रकार प्रेम से ज्ञान दो।

भावार्थ—प्राकृतजन क्रोध में आकर लड़ते हैं, एक-दूसरे पर आक्रमण करते हैं, क्रोधोन्मत्त होने पर इनके मुख से आग व थूक भी गिरने लगती है। फिर भी आप्त संन्यासियों को इन्हें प्रेम से ज्ञान देना ही है। इन्हें अक्रोध से उन प्राकृतजनों के क्रोध को जीतना है।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

पात्रों द्वारा ज्ञान-प्रसार

उत्थापय सीदतो बुध्न एनानद्भिरात्मानमभि सं स्पृशन्ताम्।
अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो यदीमाः ॥ ३० ॥

१. हे राजन्! **बुध्ने**=तले (Bottom) में **सीदतः**=बैठे हुए—अतिनिकृष्ट स्थिति में पहुँचे हुए **एनान्**—इन प्राकृत जनों को **उत्थापय**=तू ऊपर उठा—इनके अन्दर तू ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कराने का प्रयत्न कर। ये प्राकृत जन **अद्भिः**=ज्ञानजलों से **आत्मानं अभिसंस्पृशन्ताम्**=अपने को सब ओर से संसृष्ट करें। यह ज्ञानजल इनकी शुद्धि का कारण बने। २. **यत् एतत् उदकम्**=जो यह ज्ञानजल है, इसे तू **पात्रैः**=योग्य व्यक्तियों के द्वारा **अमासि**=(मा Assign, mete out) इन अधःपतित लोगों में प्राप्त कराता है, **यदि इमाः प्रदिशः**=यदि इन सब प्रकृष्ट दिशाओं में फैले हुए भी ये **तण्डुलाः**=विध्वंसकारी पुरुष हैं तो भी वे **मिताः**=(Cast, thrown out) राष्ट्र से दूर कर दिये जाते हैं। ज्ञान-प्रकाश से इनके जीवन अपकर्षशून्य होने लगते हैं और वे भी धीमे-धीमे पवित्र जीवनवाले हो जाते हैं।

भावार्थ—राजा का यह कर्त्तव्य है कि पात्र (योग्य) व्यक्तियों द्वारा राष्ट्र में सर्वतः ज्ञान के प्रसार का प्रबन्ध करे, जिससे सब प्रजाएँ ज्ञान-जल में शुद्ध जीवनवाली बनकर ऊपर उठें—राष्ट्र में किसी का जीवन अतिनिकृष्ट न रह जाए।

॥ इति षड्विंशः प्रपाठकः ॥

अथ सप्तविंशः प्रपाठकः

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

उत्तम वानस्पतिक भोजन के लिए

प्र यच्छ पर्शुं त्वरया हरौषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन्।
यासां सोमः परि राज्यं ∫ बभूवामन्युता नो वीरुधो भवन्तु ॥ ३१ ॥

१. **पर्शुम्**=परशु को—दराँती को **प्रयच्छ**=प्रकर्षेण हाथ में काबू कर। **त्वरया**=शीघ्रता कर। **ओषम् आहर**=(ओषम् Sharp taste, pungency) तीखे स्वाद को दूर कर। ओषधियों को काटनेवाले लोग **ओषधीः अहिंसन्तः**=ओषधियों को नष्ट न करते हुए **पर्वन् दान्तु**=पर्व (गाँठ) पर काटें। ओषधियों के मूल को नष्ट न होने देना आवश्यक है। २. चन्द्रमा ओषधियों में रस का सञ्चार करता है, इसी से वह ओषधीश कहलाता है। इसकी किरणों में अमृतरस होता है। उस रस से वह ओषधियों को रसयुक्त करता है, अतः कहते हैं कि **यासां राज्यम्**=जिस राज्य को **सोमः**=यह चन्द्र **परिबभूव**=व्याप्त करता है। जहाँ-जहाँ ओषधियाँ हैं, वे सब इस चन्द्र से ही रसान्वित की जाती हैं। ये **वीरुधः**=बेलें व वनस्पतियाँ **नः**=हमारे लिए **अमन्युताः भवन्तु**=क्रोध को दूर करनेवाली हों। चन्द्र के समान ही ये हमारे मनों को आह्लादमय वृत्तिवाला बनाएँ।

भावार्थ—मनुष्य वानस्पतिक भोजन करनेवाले ही बनें। ये भोजन उन्हें क्रूरवृत्तिवाला न बनाकर कोमल वृत्तिवाला बनाएगा। ओषधियों के मूल को नष्ट न होने दें। उनके ओष (pungency) को दूर करने का प्रयत्न करें। अपरिपक्व फल में 'ओष' का सम्भव होता है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पवित्रता व प्रसन्नता के वातावरण में

नवं॑ ब॒र्हिरो॑द॒नाय॑ स्तृणीत प्रि॒यं हृ॒दश्चक्षु॑षो व॒ल्गव ऽस्तु।
तस्मि॑न्दे॒वाः स॒ह दैवी॑र्वि॒शन्त्विमं प्राश्न॑न्त्वृतु॒भिर्नि॒षद्य॑॥ ३२॥

१. **ओदनाय**=भोजन के लिए **नवम्**=नवीन व प्रशस्य **बर्हिः**=कुशासन को **स्तृणीत**=बिछाओ। जो आसन **हृदः प्रियम्**=हृदय को प्रिय लगे तथा **चक्षुषः वल्गु अस्तु**=आँख के लिए सुन्दर हो। २. **तस्मिन्**=उस प्रिय सुन्दर आसन पर **देवाः**=घर के पुरुष तथा **देवीः**=देववृत्ति की स्त्रियाँ **सह**=साथ-साथ **विशन्तु**=बैठें (उपविशन्तु) और **निषद्य**=उस आसन पर बैठकर **इमम्**=इस ओदन को **ऋतुभिः**=ऋतुओं के अनुसार **प्राश्नन्तु**=खाएँ। भोजन ऋतु के अनुकूल हो। यही भोजन वस्तुतः शरीर का ठीक से पालन करेगा।

भावार्थ—भोजन के लिए जो कुशासन बिछाया जाए वह सुन्दर हो। भोजन खाने के समय हृदय में किसी प्रकार के कुविचार न हों, (देवाः दैवीः) इकट्ठे बैठकर भोजन करें। भोजन ऋतु के अनुकूल हो।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अग्निष्टोमैः—देवताभिः

वन॑स्पते स्ती॒र्णमा सी॑द ब॒र्हिर॑ग्निष्टो॒मैः संमि॑तो दे॒वता॑भिः।
त्वष्ट्रे॑व रू॒पं सु॑कृ॒तं स्वधि॑त्यै॒ना ए॒हाः परि॒ पात्रे॑ ददृश्राम्॥ ३३॥

१. हे **वनस्पते**=ज्ञानरश्मियों के स्वामिन्! व (Worshipping=पूजा की वृत्तिवाले) उपासक! **स्तीर्णम् बर्हिः**=इस बिछाये हुए कुशासन पर **आसीद**=बैठ। यहाँ बैठकर **अग्निष्टोमैः**=प्रभुस्तवनों से तथा प्रभुस्तवन द्वारा **देवताभिः**=दिव्यगुणों से **संमितः**=(Furnished with) संमित हो—अलंकृत हो। हम ज्ञानप्रधान जीवनवाले बनें। अपने प्रत्येक दिन को हम प्रभुपूजन द्वारा दिव्यगुण धारण के प्रयत्न में व्यतीत करें। २. **इव**=जिस प्रकार **त्वष्ट्रा**=एक शिल्पी द्वारा **स्वधित्या**=परशु से **रूपं सुकृतम्**=रूप सुन्दर बनाया जाता है, अर्थात् जैसे वह परशु से लकड़ी को छील-छालकर मेज़ आदि का सुन्दर रूप प्रदान करता है, इसी प्रकार **एना**=इससे **एहाः**=नानाविध चेष्टाएँ (आ+ईह) **पात्रे परिददृश्राम्**=रक्षक प्रभु के आश्रय में देखी जाएँ। यह उपसाक भी प्रभुस्मरणपूर्वक उत्तम क्रियाओं द्वारा जीवन को उत्तम रूप प्राप्त कराए।

भावार्थ—हम ज्ञानप्रधान जीवनवाले बनें। प्रभुपूजन द्वारा दिव्यगुण धारण का प्रयत्न करें। जैसे शिल्पी परशु द्वारा काष्ठ को कुरसी, मेज़ आदि का सुन्दर रूप प्राप्त कराता है, इसी प्रकार उपासक द्वारा प्रभुस्मरणपूर्वक क्रियाओं से जीवन को सुन्दर रूप दिया जाए।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**विराड्गर्भात्रिष्टुप्**॥

षष्ट्यां शरत्सु निधिपाः

ष॒ष्ट्यां श॒रत्सु॑ नि॒धि॒पा अ॒भी ऽच्छा॑त्स्व ऽः प॒क्वेना॒भ्य ऽश्नवातै।
उपै॑नं जीवा॒न्पि॒तर॑श्च पु॒त्रा एतं स्व॒र्गं ग॑म॒यान्त॑म॒ग्नेः॥ ३४॥

१. **षष्ट्यां शरत्सु**=जीवन के प्रथम साठ वर्षों में **निधिपाः**=वीर्यरूप निधि (वास्तविक सम्पत्ति) का रक्षक पुरुष **स्वः अभि इच्छात्**=स्वर्ग को प्राप्त करने की कामना करे। यह **पक्वेन**=अपने परिपक्व ज्ञान से अथवा शक्ति के परिपाक से **अभि अश्नवातै**=(स्वः) स्वर्ग को प्राप्त करनेवाला बनता है। यदि एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य व गृहस्थ में शक्तिरूप निधि का रक्षण

करता है और ज्ञान की परिपक्वता के लिए प्रयत्न करता है, तो उसका घर स्वर्ग क्यों न बनेगा? २. **एनम्**=इसके आश्रय में **पितरः पुत्राः च उपजीवान्**=इसके वृद्ध माता-पिता व सन्तान सुखी व सुन्दर जीवनवाले हों। यह घर में वृद्ध माता-पिता की सेवा करे और सन्तानों का सुन्दर निर्माण करे। हे प्रभो! **एनम्**=इस निधिपा पुरुष को **अग्नेः**=अग्नि के—आहवनीय अग्नि के **अन्तम्**=सुन्दर **स्वर्गं गमय**=स्वर्ग को प्राप्त कराइए। यह घर में यज्ञों को करता हुआ घर को स्वर्ग बनाने में समर्थ हो।

भावार्थ—जीवन के प्रथम साठ वर्षों में हम वीर्यरूपनिधि का रक्षण करनेवाले बनें (बाद में तो रक्षण स्वतः ही हो जाता है '**धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते**')। शक्तिरक्षण व परिपक्व ज्ञान से हम घर को स्वर्ग बनाएँ। यहाँ पितरों का आदर करें व सन्तानों के निर्माण का ध्यान करें तभी हमारा घर 'यज्ञशील पुरुष का सुन्दर स्वर्ग' बनेगा।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु-दर्शन के लिए तीन बातें

धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अच्युतं त्वा देवताश्च्यावयन्तु।
तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद्वासयातः पर्यग्निधानात्॥ ३५॥

१. हे प्रभो! आप **धर्ता**=धारण करनेवाले हैं। **पृथिव्याः धरुणे**=इस शरीररूप पृथिवी के धारण होने पर **ध्रियस्व**=आप हमारे हृदयों में धारण किये जाएँ, अर्थात् हम अपने हृदयों में आपका धारण करनेवाले बनें। संयम द्वारा शरीर को स्वस्थ रखकर हम हृदयों में आपका धारण करनेवाले हों। **अच्युतं त्वा**=(imperishable) अक्षर (अविनाशी) आपको **देवताः**=देववृत्ति के पुरुष **च्यावयन्तु**=अपने हृदयों में चुवाने (स्थापित करने) का प्रयत्न करें (make, form, create, bring about)। देववृत्ति के बनकर हम हृदयों में आपका दर्शन करनेवाले हों। २. **तं त्वा**=उन आपको **दम्पती**=पति-पत्नी **जीवन्तौ**=स्वयं उत्कृष्ट जीवन को धारण करते हुए **जीवपुत्रौ**=जीवित पुत्रोंवाले होते हुए **परि**=(Very much, excessively) खूब ही **अग्निधानात्**=कुण्ड में यज्ञाग्नि के आधान के द्वारा **उद्वासयातः**=अपने हृदयों में उत्कर्षेण बसाते हैं। यज्ञों को करते हुए ये पवित्र जीवनवाले बनकर हृदय में आपका दर्शन करते हैं।

भावार्थ—हृदय में प्रभुदर्शन के लिए आवश्यक है कि हम (क) संयम द्वारा शरीर को स्वस्थ रक्खें (धरुणे पृथिव्याः), (ख) देववृत्ति के बनें (देवताः), (ग) खूब ही यज्ञशील हों (परिअग्निधानात्)।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु-प्राप्ति व सर्वकामाप्ति

सर्वान्त्समागा अभिजित्य लोकान्यावन्तः कामाः समतीतृपस्तान्।
वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन्पात्रे अध्युद्धरैनम्॥ ३६॥

१. हे साधक! **सर्वान् लोकान् अभिजित्य**=शरीररूप 'पृथिवी', हृदयरूप 'अन्तरिक्ष' तथा मस्तिष्करूप 'द्युलोक' इन सब लोकों को जीतकर, अर्थात् शरीर को स्वस्थ, हृदय को पवित्र तथा मस्तिष्क को दीप्त बनाकर **सम् आगाः**=तू प्रभु के समीप प्राप्त होनेवाला हो। प्रभु-प्राप्ति के द्वारा **यावन्तः कामाः**=जितनी भी अभिलाषाएँ हैं, **तान्**=उनका तू **सम् अतीतृपः**=सम्यक् तृप्त करनेवाला हो। प्रभु-प्राप्ति में सब कामनाएँ पूर्ण हो ही जाती हैं। २. इस साधक के जीवन को **आयवनम्**=(आ+यु=मिश्रणामिश्रणयोः) समन्तात् बुराइयों का अमिश्रण तथा अच्छाइयों का

मिश्रण **च**=और **दर्विः**=वासनाओं का विदारण **विगाहेथाम्**=(Pervade) विशेषरूप से व्याप्त करनेवाले हों। इस प्रकार हे साधक! तू **एनम्**=अपने इस जीवन को **एकस्मिन्**=उस अद्वितीय **पात्रे**=रक्षक प्रभु में **अधि उद्धर**=आधिक्येन उद्धृत करनेवाला बन—प्रभुस्मरण करता हुआ तू अपने जीवन का उद्धार कर। यह प्रभुस्मरण ही तुझे भव-सागर में डूबने से बचाएगा।

भावार्थ—हम 'शरीर, मन व मस्तिष्क' को स्वस्थ बनाते हुए प्रभु को प्राप्त करें। प्रभु-प्राप्ति में सब कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। हमारे जीवनों में बुराइयों का अमिश्रण व वासनाओं का विदारण विशेषरूप से हो। उस अद्वितीय रक्षक प्रभुस्मरण के द्वारा हम अपना उद्धार करें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

प्रभु की गोद में

उप॑ स्तृणीहि प्र॒थय॑ पु॒रस्ता॑द् घृ॒तेन॒ पात्र॑म॒भि घा॑रयै॒तत्।
वा॒श्रेवो॒स्रा तरु॑ण स्तन॒स्युमि॒मं दे॑वासो अभि॒हिङ्कृ॑णोत॥ ३७॥

१. हे साधक! तू **उपस्तृणीहि**=उस अमृत प्रभु को अपना उपस्तरण बना (अमृतोपस्तरण-मसि)—प्रभु की गोद में स्थित हो। उस प्रभु को ही **पुरस्तात् प्रथय**=अपने सामने विस्तृत कर—सदा प्रभुस्मरण करनेवाला बन—प्रभु से ओझल न हो। इस प्रकार **एतत् पात्रम्**=इस शरीररूप पात्र को **घृतेन**=ज्ञानदीप्ति के द्वारा **अभिघारय**=क्षरित मलोंवाला व दीप्तिवाला बना। २. हे **देवासः**=देववृत्ति के पुरुषो! **इमं अभिहिङ्कृणोत**=इस प्रभु के प्रति प्रेम से स्तुतिवचनों का इस प्रकार उच्चरण करो, **इव**=जैसेकि **वाश्रा उस्रा**=रंभाती हुई गौ **तरुणम्**=तरुण **स्तनस्युम्**=स्तन के दूध पीने की इच्छावाले बछड़े के प्रति शब्द करती है।

भावार्थ—हम प्रभु की गोद में बैठें, सदा प्रभु का स्मरण करें, ज्ञान द्वारा शरीर को पवित्र व दीप्त बनाएँ। प्रभु के प्रति प्रेम से स्तोत्रों का उच्चारण करें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

महिषः सुपर्णः

उपा॑स्तरी॒रक॑रो लो॒कमे॒तमुरुः॑ प्र॒थता॒मस॑मः स्व॒र्गः।
तस्मि॑ञ्छ्रयातै॒ महि॒षः सु॑प॒र्णो दे॒वा ए॑नं दे॒वता॑भ्यः॒ प्र य॑च्छान्॥ ३८॥

१. **उप अस्तरीः**=तूने उस अमृत प्रभु को अपना उपस्तरण बनाया है—प्रभु की गोद में बैठा है। इस प्रकार **एतं लोकं अकरः**=इस प्रकाश को—आलोक को प्राप्त (सिद्ध) किया है। अब तेरे लिए यह **उरुः**=विशाल **असमः**=(षम वैक्लव्ये) सब व्याकुलताओं से शून्य **स्वर्गः प्रथताम्**=सुखमय लोक विस्तृत हो। प्रभुस्मरण व प्रकाश के होने पर हमारा लोक क्यों न स्वर्ग बनेगा? २. **तस्मिन्**=उस स्वर्ग में वह **छ्रयातै**=आश्रय करता है, जोकि **महिषः**=(मह पूजायाम्) प्रभु का पूजन करनेवाला और **सुपर्णः**=उत्तम पालनात्मक व पूरणात्मक कर्मों में व्यापृत रहता है। **एनम्**=इस 'महिष सुपर्ण' को **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष **देवताभ्यः**=दिव्यवृत्तियों के लिए **प्रयच्छान्**=प्राप्त कराएँ। यह साधक देवों के सम्पर्क में दिव्यवृत्तिवाला बने।

भावार्थ—प्रभु की गोद में स्थित होने व प्रकाश प्राप्त करने पर जीवन सुखमय बनता है। इस स्वर्ग में—सुखमय जीवन में वही निवास करता है जो प्रभुपूजन करता हुआ सर्वभूतहितरत रहता है। देवों के सम्पर्क में यह सदा देववृत्तिवाला बनता है।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुब्गर्भात्रिष्टुप्** ॥

सह वो अन्नभागः

यद्याज्जाया पचति त्वत्परःपरः पतिर्वा जाये त्वत्तिरः।
सं तत्सृजेथां सह वां तदस्तु सम्पादयन्तौ सह लोकमेकम्॥ ३९॥

१. हे गृहपते! **जाया**=तेरी पत्नी **यत् यत्**=जो-जो कुछ **त्वत् परः पचति**=मुझसे परे (अलग) पकाती है, **वा**=अथवा हे **जाये**=पत्नी! **पतिः त्वत् परः (पचति)**=पति तुझसे अलग पकाता है। **तिरः**=वह सब दूर हो जाए—(तिरः भू Disappear, vanish) तुम्हारे घर से वह सब तिरोहित हो जाए। **तत् संसृजेथाम्**=उस सबको आप दोनों मिलकर संसृष्ट करो। **वाम्**=आप दोनों का **तत्**=वह खान-पान **सह अस्तु**=साथ-साथ हो। इस प्रकार ही आप **एकं लोकं सम्पादयन्तौ**=एक लोक का सम्पादन करते हुए होओगे। २. अलग-अलग खाते रहने से उस प्रेम की सृष्टि नहीं होती जोकि एक घर को स्वर्ग बनाने के लिए आवश्यक है। इसी दृष्टि से प्रभु ने अन्यत्र आदेश दिया है कि '**समानी प्रपा सह वो अन्नभागः**' तुम्हारा पीने का पानी अलग-अलग न हो—तुम्हारा अन्न का सेवन अलग-अलग न होकर साथ-साथ ही हो।

भावार्थ—पति-पत्नी अलग-अलग चुपके से कुछ न खाकर घर में मिलकर ही खानेवाले हों। पाणिग्रहण के मन्त्रों में पति व्रत लेता है कि '**न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये**'=मैं अलग से कुछ न खाऊँगा—मन में ऐसा विचार ही न आने दूँगा। यही बात प्रेमवृद्धि द्वारा घर को स्वर्ग बनाती है।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सम्मिलित भोजन व बन्धुत्व अविस्मरण

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत्पुत्राः परि ये संबभूवुः।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवः समायान्॥ ४०॥

१. **यावन्तः**=जितने भी **अस्याः**=इस मेरी पत्नी में **अस्मत् पुत्राः**=मेरे पुत्र **पृथिवीं सचन्ते**=इस पृथिवी के साथ सम्बद्ध हैं, अर्थात् जीवित हैं और **ये**=जो **परि संबभुवुः**=चारों ओर—इधर-उधर भिन्न-भिन्न स्थानों में रह रहे हैं, हे दम्पती! तुम **तान् सर्वान्**=उन सबको **पात्रे उपह्वयेथाम्**=पात्र में पुकारो, अर्थात् समय-समय पर भोजन के लिए एकत्र करो। **नाभिम्**=बन्धुत्व को **जानानाः**=जानते हुए **शिशवः समायान्**=शिशु वहाँ एक स्थान पर आएँ। २. माता-पिता से सन्तान जन्म लेते हैं। बड़े होकर वे भिन्न-भिन्न स्थानों में कार्य करने लगते हैं। उनका भी परिवार बनता है। माता-पिता को चाहिए कि कभी-कभी सन्तानों को परिवार समेत भोजन पर बुलाएँ। उन सबके छोटे-छोटे बालक भी बन्धुत्व को अनुभव करते हुए वहाँ एकत्र होंगे। वस्तुतः एकत्र होना उन्हें एक-दूसरे के समीप लाएगा।

भावार्थ—माता-पिता समय-समय पर सब सन्तानों को सपरिवार भोजन पर बुलाते रहें, ताकि सब भाइयों का व उनके सन्तानों का परस्पर बन्धुत्व (स्मरण) बना रहे। परस्पर के बन्धुत्व को वे भूल ही न जाएँ।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

ऐश्वर्य, माधुर्य, ज्ञानरुचिता, नीरोगता

वसोर्या धारा मधुना प्रपीना घृतेन मिश्रा अमृतस्य नाभयः।
सर्वास्ता अव रुन्धे स्वर्गः षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभी ∫च्छात्॥ ४१॥

१. **वसोः याः धाराः**=निवास के लिए आवश्यक धन की जो धाराएँ हैं, जोकि **मधुना प्रपीनाः**=माधुर्य से—परस्पर मधुर व्यवहार से—अतिशयेन पुष्ट हुई-हुई हैं, **घृतेन मिश्राः**=ज्ञानदीप्ति से युक्त हैं, तथा **अमृतस्य नाभयः**=नीरोगता की नाभि (केन्द्र) हैं, **ताः सर्वाः**=उन सब वसुधाराओं को **स्वर्गः अवरुन्धे**=स्वर्ग अपने में रोकता है, अर्थात् 'जहाँ ऐश्वर्य है—मधुर व्यवहार है—ज्ञान की प्रधानता है—नीरोगता का निवास है' वहीं स्वर्ग है। २. इस स्वर्ग को **अभीच्छात्**=वही व्यक्ति प्राप्त करने की कामना करे जोकि **षष्ट्यां शरत्सु निधिपाः**=जीवन के प्रथम साठ वर्षों में वीर्यरूप निधि का रक्षण करनेवाला है। प्रथम वयस् में यदि हम संयमी जीवन बिताते हुए इस अद्भुत वीर्य-निधि का रक्षण करते हैं तो हमारा जीवन अवश्य स्वर्गमय बनता है। उस सशक्त जीवन में हम पुरुषार्थ से आवश्यक धन का अर्जन करने में समर्थ होते हैं, हमारे व्यवहार में माधुर्य बना रहता है, हमारी प्रवृत्ति ज्ञान-प्रधान होती है और शरीर सदा नीरोग होता है। यही तो स्वर्ग है।

भावार्थ—हम जीवन के प्रथम साठ वर्षों में संयम द्वारा वीर्यरक्षण से जीवन को स्वर्ग बनाएँ। 'ऐश्वर्यशाली, मधुर, ज्ञानरुचि व नीरोग' बनकर सुखी हों।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

वीर्य-निधि का रक्षण

निधिं निधिपा अभ्ये ∫ नमिच्छादनीश्वरा अभितः सन्तु येऽन्ये।
अस्माभिर्दत्तो निहितः स्वर्गस्त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्त्स्वर्गान्रुरुक्षत्॥ ४२॥

१. **निधिपाः**=वीर्यरूप निधि की रक्षा करनेवाला **एनं निधिम्**=इस वीर्य-निधि को **अभीच्छात्**=सब प्रकार से प्राप्त करना चाहे। इस वीर्यरूप निधि का वह सब प्रकार से रक्षण करे। **ये अन्ये**=जो इन वीर्य-निधि के रक्षकों से भिन्न व्यक्ति हैं, अर्थात् जो इस निधि के महत्त्व को न समझते हुए इसका रक्षण नहीं करते वे **अभितः अनीश्वराः सन्तु**=इहलोक व परलोक दोनों के दृष्टिकोण से ऐश्वर्यरहित हों—न वे अभ्युदय को प्राप्त करें, न निःश्रेयस को। २. **अस्माभिः**=हमसे तो यह वीर्य-निधि **दत्तः**=(दॆङ् पालने) रक्षित हुआ है, इसीलिए **स्वर्गः निहितः**=हमारे लिए स्वर्ग स्थापित हुआ है। मनुष्य को चाहिए कि वह वीर्यरक्षण द्वारा 'ज्ञान, कर्म व उपासना' रूप **त्रिभिः काण्डैः**=तीन काण्डों के द्वारा—जीवन के इन तीन नियमों के द्वारा **त्रीन् स्वर्गान् अरुक्षत्**=तीन स्वर्गों का आरोहण करे। कर्मकाण्ड द्वारा शरीर को सशक्त व स्वस्थ बनाए। उपासना काण्ड द्वारा हृदय को निर्मल बनाए। ज्ञानकाण्ड द्वारा मस्तिष्क को दीप्त रक्खे।

भावार्थ—वीर्यरक्षण के अभाव में न अभ्युदय की प्राप्ति है, न निःश्रेयस का सम्भव। वीर्यरक्षक के लिए ही स्वर्ग है। यह वीर्यरक्षक पुरुष ज्ञान, कर्म व उपासना द्वारा 'द्युलोक (मस्तिष्क), पृथिवीलोक (शरीर) व अन्तरिक्षलोक (हृदय) का विजय करता है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

आदित्य अङ्गिरस्, न कि क्रव्यात् पिशाच

अग्नी रक्षस्तपतु यद्विदेवं क्रव्यात्पिशाच इह मा प्र पास्त।
नुदाम एनमप रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः सचन्ताम्॥ ४३॥

१. **अग्निः**=राष्ट्र का अग्रणी राजा **रक्षः तपतु**=उन राक्षसीवृत्ति के लोगों को दण्डित करे, **यत्**=जोकि **विदेवम्**=सब दिव्यवृत्तियों से रहित हैं। **क्रव्यात्**=मांसाहारी **पिशाचः**=राक्षसीवृत्ति

का पुरुष **इह**=राष्ट्र में **मा प्रपास्त**=रक्षण को प्राप्त न करे। २. **एनम्**=इस राक्षसीवृत्तिवाले पुरुष को **नुदामः**=हम अपने से परे प्रेरित करते हैं, इसे **अस्मत् अपरुध्मः**=अपने से दूर ही रोकते हैं। **एनम्**=हमारे राष्ट्र के प्रजाजनों को **आदित्याः**=ज्ञान का आदान करनेवाले **अंगिरसः**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले—स्वस्थ शरीर पुरुष ही **सचन्ताम्**=मेल प्राप्त करानेवाले हों।

भावार्थ—राजा ऐसी व्यवस्था करे कि प्रजाजनों का सम्पर्क 'क्रव्यात् पिशाचों' से न होकर 'आदित्य अङ्गिरसों' से हो।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**पराबृहतीत्रिष्टुप्**॥

घृत+मधु

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं प्रति वेदयामि।
शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम्॥ ४४॥

१. प्रभु कहते हैं कि मैं इन **आदित्येभ्यः**=ज्ञान का आदान करनेवाले, **अङ्गिरोभ्यः**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले, अर्थात् पूर्ण स्वस्थ पुरुषों के द्वारा **घृतेन मिश्रम्**=ज्ञानदीप्ति से युक्त (घृ दीप्तौ) **इदं मधु**=इस माधुर्य को—मधुर व्यवहार को **प्रतिवेदयामि**=तुम्हारे लिए प्राप्त कराता हूँ। इन आदित्यों के सम्पर्क में हमें 'ज्ञान व मधुर व्यवहार' की शिक्षा प्राप्त होती है। २. हे पति-पत्नी! तुम दोनों **ब्राह्मणस्य**=इस ज्ञानी के द्वारा दिये गये **एतम्**=इस ज्ञान व माधुर्य को **अनिहत्य**=नष्ट न करके **शुद्धहस्तौ**=शुद्ध हाथोंवाले होकर, अर्थात् सुपथ से धनार्जन करते हुए तथा **सुकृतौ**=सदा शुभ कर्मों को करते हुए **स्वर्गम् अपि इतम्**=स्वर्ग की ओर बढ़ो (चलो), अर्थात् तुम अपने घर को स्वर्ग बना पाओ।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमें आदित्य विद्वानों के सम्पर्क में ज्ञान व माधुर्य का शिक्षण प्राप्त हो। हम इस ब्राह्मण से दिये गये ज्ञान को नष्ट न करते हुए, सुपथ से धनार्जन करके, सुकृत् बनकर घर को स्वर्ग बनाएँ।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

घृतवत् सर्पिः

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात्परमेष्ठी समाप।
आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत्समङ्ग्ध्येष भागो अङ्गिरसो नो अत्र॥ ४५॥

१. हृदयान्तरिक्ष से सम्बद्ध उपासनाकाण्ड है, शरीररूप पृथिवी से सम्बद्ध कर्मकाण्ड तथा मस्तिष्करूप द्युलोक के साथ ज्ञानकाण्ड का सम्बन्ध है। मैं **अस्य**=इस प्रभु के **इदं उत्तमं काण्डम्**=इस सर्वोत्तम ज्ञानकाण्ड को **प्रापम्**=प्राप्त हुआ हूँ, अर्थात् प्रभु से वेद द्वारा दिये गये ज्ञान को प्राप्त करता हूँ। **यस्मात् लोकात्**=जिस ज्ञान के प्रकाश से **परमेष्ठी समाप**=प्रभु प्राप्त होते हैं। २. हे जीव! तू **घृतवत्**=ज्ञानदीप्ति से युक्त **सर्पिः**=(सृप गतौ) क्रियाशीलता को **आसिञ्च**=अपने जीवन में सींच, अर्थात् सदा ज्ञानपूर्वक कर्मों को करनेवाला बन और इस प्रकार **समङ्ग्धि**=अपने जीवन को सद्गुणों से अलंकृत (Decorate) कर। **अत्र**=इस जीवन में **अङ्गिरसः**=अङ्गिरस् पुरुष का **एषः भागः नः**=यह भजनीय व्यवहार हमारा हो। हम भी अङ्गिरस् बनें और सदा ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए जीवन को सद्गुणों से मण्डित करें।

भावार्थ—हम ज्ञान को प्राप्त करें। ज्ञान के द्वारा प्रभु को प्राप्त करें। हमारी सब क्रियाएँ ज्ञानपूर्वक हों और इस प्रकार हमारे जीवन सद्गुणों से अलंकृत हो पाएँ।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

सत्य, तप व देववृत्ति

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्म एतम्।
मा नो द्यूतेऽव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृजता पुरा मत्॥ ४६॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **एतं निधिम्**=इस वीर्यरूप निधि को तथा **शेवधिम्**=(Valuable treasure) धन को **परिदद्मः**=तेरे लिए देते हैं ताकि तू **सत्याय**=सत्ययुक्त जीवन को बिता सके, **तपसे**=तपस्वी जीवन को बिता सके **च**=तथा **देवताभ्यः**=दिव्यगुणों को धारण कर सके। अशक्ति व निर्धनता में 'सत्य, तप व देववृत्ति' की साधना सम्भव नहीं। २. **नः**=हमसे दिया गया वह धन **द्युते मा अवगात्**=जुए में न चला जाए और **मा समित्याम्**=संग्रामों में या महफ़िलों में नष्ट न हो जाए। **मत्**=मुझसे **पुरा**=(for the defence of) सत्य आदि के रक्षण के लिए प्राप्त इस धन को **अन्यस्मै**='सत्य, तप व देवताओं' से भिन्न बातों के लिए **मा उत्सजृत**=मत दे डालो।

भावार्थ—प्रभु हमें वीर्यरूप निधि व लक्ष्मी (धन) को प्राप्त कराते हैं ताकि हमारा जीवन 'सत्य, तप व देववृत्ति' वाला बन सके। हम इस धन को जुए व लड़ाइयों व महफ़िलों में ही नष्ट न कर दें। प्रभु-प्रदत्त धन को 'सत्य, तप व देववृत्ति' के रक्षण का साधन ही बनाएँ।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्** ॥

पचामि----ददामि

अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन्करुणेऽधि जाया।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वयः उत्तरावत्॥ ४७॥

१. **अहं पचामि, अहं ददामि**=घर में मैं जिस भी वस्तु का परिपाक करता हूँ, प्रथम उसे देता हूँ। अतिथियज्ञ में व बलिवैश्वदेवयज्ञ में उसका विनियोग करके यज्ञशेष का ही सेवन करता हूँ। वृद्ध माता-पिता को खिलाकर ही पीछे मैं खाता हूँ—इसप्रकार पितृयज्ञ को भी लुप्त नहीं होने देता। **मम**=मेरे **करुणे कर्मन्**=करुणात्मक कर्मों में **जाया अधि**=मेरी पत्नी अधिष्ठातृरूपेण कार्य करनेवाली है। 'आधार देने योग्य व्यक्तियों को (आध्रं चित्) आवश्यक पदार्थ प्राप्त कराना उसका कार्य है। २. **पुत्रः**=सन्तान भी **कौमारः**=क्रीड़क की मनोवृत्तिवाला (Sportsman like spirit) तथा **लोकः**=प्रकाशमय जीवनवाला **अजनष्ट**=हुआ है। हमारी पुत्रों व पुत्र-वधुओं के लिए एक ही प्रेरणा है कि तुम भी **अनु**=हमारे पीछे **उत्तरावत् वयः आरभेथाम्**=उत्कृष्ट जीवन को प्रारम्भ करो।

भावार्थ—उत्कृष्ट जीवन का स्वरूप यह है कि हम (क) यज्ञशेष को खाएँ (ख) गृहिणी उपकार के कार्यों की अधिष्ठात्री हो (ग) सन्तानों को हम क्रीड़क की मनोवृत्तिवाला व प्रकाशमय जीवनवाला बनाएँ (घ) उन्हें एक ही प्रेरणा दें कि उन्होंने हमसे अधिक उत्कृष्ट जीवन बिताना है।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

न किल्बिषं, न आधारः

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः सममामान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत्पक्तारं पक्वः पुनरा विशाति॥ ४८॥

१. **अत्र**=यहाँ हमारे जीवन में **न किल्बिषम् अस्ति**=न पाप है, **न आधारः**=(धृङ् अवध्वंसने falling) न पतन। **न**=न ही यह बात है **यत्**=कि **मित्रैः सम्**=मित्रों के साथ

अममानः एति=(अम् to eat) इधर-उधर खाता हुआ घूमता है। आजकल के युग की भाषा में वह होटलों में मित्रों के साथ चायपार्टी ही नहीं करता रहता है। २. **नः**=हमारा **एतत् पात्रम्**=यह अन्न का पात्र **अनूनं निहितम्**=न न्यूनतावाला स्थापित होता है। हमारे घर में कभी अन्न की कमी नहीं होती। इसप्रकार पवित्र जीवन में **पक्तारम्**=अपना परिपाक करनेवाले का **पक्वः**=यह परिपक्व हुआ-हुआ वीर्य पुनः **आविशाति**=फिर से शरीर में समन्तात् प्रवेश करता है—शरीर में ही व्याप्त हो जाता है।

भावार्थ—हमारे जीवनों में न पाप हो, न पतन। न ही हम मित्रों के साथ इधर-उधर खाते-पीते रहें। घर में हमारे अन्न की कमी न हो परिपक्वशक्ति को तपस्या के द्वारा शरीर में ही व्याप्त करने का प्रयत्न करें।

ऋषिः—**यमः**॥ **स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

धेनुः, अनड्वान्, वयः

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति।
धेनुरनड्वान्वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु॥ ४९॥

१. हम अपने व्यवहार में **प्रियाणां प्रियं कृणवाम्**=प्रिय व्यक्तियों का प्रिय ही करें। **यतमे द्विषन्ति**=जो भी द्वेष करते हैं, **ते तमः यन्तु**=वे अन्धकार को प्राप्त हों। द्वेष करनेवालों का जीवन अन्धकारमय हो। २. **धेनुः**=दुधारू गौ, **अनड्वान्**=हमारी गाड़ियों को खैंचनेवाला अथवा कृषि का साधनभूत बैल तथा **आयत् एव वयः**=(Sacrificial food) सदा प्राप्त होता हुआ यज्ञिय भोजन **पौरुषेयं अपमृत्युम्**=पुरुष-सम्बन्धी अपमृत्यु को **नुदन्तु**=हमारे जीवन से दूर धकेल दे। उत्तम दूध को, कृषि से उत्पन्न अन्न को तथा यज्ञिय भोजन को प्राप्त करते हुए हम पूर्ण दीर्घजीवन को प्राप्त करें।

भावार्थ—हम अपने व्यवहार में प्रिय ही रहें—द्वेषभावना से दूर रहें। द्वेष जीवन को अन्धकारमय बना देता है। गोदुग्ध, कृषि से उत्पन्न अन्न और यज्ञिय भोजन का सेवन करते हुए हम अपमृत्यु से बचें और पूर्ण जीवन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

हिरण्यं ज्योतिः

समग्नयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च सिन्धून्।
यावन्तो देवा दिव्या३तपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो बभूव॥ ५०॥

१. **अग्नयः**=प्रगतिशील पुरुष **अन्यो अन्यम् संविदुः**=परस्पर एक-दूसरे को सम्यक् जानते हैं। वे परस्पर बड़े उत्तम व्यवहारवाले होते हैं। अग्नि व प्रगतिशील पुरुष वह है **यः ओषधीः सचते**=जोकि वानस्पतिक भोजनों को करता है, **च यः**=और जो **सिन्धून्**=(स्यन्दन्ते) प्रवाहित होनेवाले जलों को पीता है। 'सादा खाना, पानी-पीना और उच्च विचारवाला बनना' यही 'अग्नि' का लक्षण है। २. **यावन्तः**=जितने भी **देवाः**=देववृत्ति के पुरुष हैं, वे **दिवि**=मस्तिष्करूप द्युलोक में **आतपन्ति**=अपने को ज्ञानदीप्त बनाते हैं। यह ज्ञानदीप्ति ही उन्हें पवित्र जीवनवाला बनाकर देव बना देती है। **पचतः**=जो भी अपने जीवन को तपस्या की अग्नि में परिपक्व करता है, उस व्यक्ति को **हिरण्यं ज्योतिः**=हितरमणीय ज्ञानज्योति **बभूव**=प्राप्त होती है (भू प्राप्तौ)।

भावार्थ—प्रगतिशील पुरुष परस्पर प्रीतिपूर्वक वर्तते हैं, वे द्वेष नहीं करते। ये अन्न व जल का सेवन करते हैं और ज्ञान के द्वारा जीवन को देववृत्ति का बनाते हैं। इन तपस्वियों को हितरमणीय ज्योति प्राप्त होती है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

क्षत्र+अमोतं वासः

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये।
क्षत्रेणात्मानं परि धापयाथोऽमोतं वासो मुखमोदनस्य॥ ५१॥

१. **त्वचाम् एषा**=त्वचाओं में यह त्वचा—किन्हीं भी बालों से अनावृत त्वचा **पुरुषे संबभूव**=पुरुष में है, अर्थात् पुरुष की यह त्वचा है जो कि नग्न-सी है। **ये अन्ये सर्वे पशवः**=जो और सारे पशु हैं, वे जो **अनग्नाः**=नग्न नहीं है—उन्हें शीतोष्ण के निवारण के लिए वस्त्रान्तर की आवश्यकता नहीं। २. हे पति-पत्नी! आप दोनों **क्षत्रेण**=बल से—वीर्यशक्ति से **आत्मानम्**=अपने को **परिधापयाथः**=परिधापित करो—यह क्षत्र ही आपका वस्त्र बने। इस क्षत्र के साथ **अमा ऊतं वासः**=घर में बुना हुआ वस्त्र **ओदनस्य**=इन अन्नमयकोश का **मुखम्**=प्रधान परिधान (वस्त्र) होता है।

भावार्थ—प्रभु ने मनुष्य की त्वचा को अन्य प्राणीयों की तरह बालों से आवृत नहीं किया, अतः मनुष्य को वस्त्रों की आवश्यकता होती है। मुख्य वस्त्र तो 'बल' ही है। जितनी शक्ति कम होगी उतनी वस्त्रें की आवश्यकता अधिक होगी। उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए कि घर पर कते-बुने वस्त्र ही पहने जाएँ।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

समानं तन्तुं अभि सं वसानौ

यदक्षेषु वदा यत्समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या।
समानं तन्तुमभि संवसानौ तस्मिन्त्सर्वं शमलं सादयाथः॥ ५२॥

१. **यत्**=जो झूठ तुम **अक्षेषु**=अभियोगों (Lawsuit) में **वदाः**=बोल बैठते हो, **यत् समित्याम्**= जो संग्रामों में (व सभाओं में), **यत् वा**=अथवा जो **अनृतम्**=झूठ **वित्तकाम्या**=धन की कामना से **वदाः**=तुम बोलते हो, उस **सर्वं शमलम्**=सब नैतिक अपवित्रता (Moral impurity) को, **समानं तन्तुम्**=सर्वत्र समानरूप से विस्तृत (Supreme Being) सर्वव्यापक उस प्रभु को **अभिसंवसानौ**=चारों और से ओढ़ते हुए, **तस्मिन् सादयाथः**=उस प्रभु में विनष्ट कर डालो। प्रभु में निवास करनेवाला व्यक्ति इन अनृतरूप मलों से आक्रान्त नहीं होता।

भावार्थ—अभियोगों के अवसरों पर, संग्रामों व सभाओं में तथा धन की कामना से हम झूठ बोल बैठते हैं, परन्तु जब हम अपने को सर्वव्यापक प्रभु से आच्छादित हुआ-हुआ अनुभव करेंगे तब यह सब अनृत का मल हमसे दूर हो जाएगा।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वर्षं वनुष्व----अपि गच्छ देवान्

वर्षं वनुष्वापि गच्छ देवांस्त्वचो धूमं पर्युत्पातयासि।
विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्त्सयोनिर्लोकमुप याह्योतम्॥ ५३॥

१. **वर्षम्**=(वृषु सेचने) शक्ति के शरीर में सेचन को **वनुष्व**=तू सेवित कर। शरीर में उत्पन्न शक्ति को शरीर में ही सिक्त करने के लिए यत्नशील हो और इसप्रकार **देवान् अपिगच्छ**=दिव्यगुणों की ओर गतिवाला हो। **त्वचः**=अपनी त्वचा से **धूमम्**=मलिनतारूप धूम को **पर्युत्पातयासि**=दूर फेंकनेवाला हो। शरीर में शक्ति के रक्षण से जहाँ मन दिव्यगुण सम्पन्न-बनेगा, वहाँ शरीर की त्वचा भी रोगों की निस्तेजस्विता से शून्य होकर चमक उठेगी २. **विश्वव्यचाः**=सब शक्तियों

के विस्तारवाला, **घृतपृष्ठः**=ज्ञानदीप्ति को अपने में सींचनेवाला **भविष्यन्**=होना चाहता हुआ तू **सयोनिः**=प्रभु के साथ एक घर में निवासवाला, अर्थात् हृदय में प्रभु के साथ स्थित हुआ-हुआ **एतं लोकम् उपयाहि**=इस लोक को प्राप्त हो—प्रभुस्मरणपूर्वक इस लोक में विचरनेवाला बन। यह प्रभुस्मरण तेरी सब क्रियाओं को पवित्र बनाएगा।

भावार्थ—शरीर में ही वीर्यशक्ति के सेचन से मन में दिव्यगुणों की स्थिति होगी तथा शरीर में नीरोगता के कारण त्वचा चमक उठेगी। साथ ही प्रभुस्मरणपूर्वक सब क्रियाओं को करने पर मनुष्य अपनी शक्तियों का विस्तार करेगा और ज्ञानदीप्ति से अपने को दीप्त कर पाएगा।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

कृष्णा, रुशती, लोहिनी

तन्वं ∫ स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्नन्यवर्णाम्।
अपाजैत्कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते अग्नौ जुहोमि॥ ५४॥

१. **स्वर्गः**=(स्वः गच्छति) प्रकाश को प्राप्त होनेवाला व्यक्ति **तन्वम्**=अपने शरीर को **बहुधा**=नाना प्रकार से **विचक्रे**=विशिष्ट (भिन्न-भिन्न) रूपों में करता है। वैसे-वैसे ही वह इस कार्य को कर पाता है, **यथा**=जिस-जिस प्रकार वह इस तनू को **आत्मन्**=अपने अन्दर **अन्यवर्णाम् विदे**=विलक्षण वर्णोंवाली जान पाता है। वह देखता है कि जिस अजा (प्रकृति) से उसका यह शरीर बना है वह अजा लोहित, शुक्ल व कृष्णावर्णा है। उसका शरीर व शरीरस्थ मन भी परिणामतः लोहित, शुक्ल व कृष्णावृत्तियोंवाला है। ये वृतियाँ ही क्रमशः 'राजसी, सात्त्विक व तामसी' कहलाती हैं। ३. यह **स्वर्गः**=प्रकाश को प्राप्त होनेवाला व्यक्ति **कृष्णाम् अपाजैत्**=कृष्णावर्णा तामसीवृत्ति को अपने से दूर करता है—इसे सुदूर पराजित करके नष्ट करनेवाला होता है। **रुशतीम्**=दीप्त (Bright) सात्त्विकी वृत्ति को **पुनानः**=पवित्र व परिमार्जित करता है और या **लोहिनी**=जो रक्तवर्णा राजसी वृत्ति है, **ते ताम्**=हे प्रभो! आपकी बनाई हुई उस वृत्ति को **अग्नौ जुहोमि**=प्रगतिशीलता में आहुत (अर्पित) करता हूँ, अर्थात् रजोगुण का वह 'स्वर्ग' (प्रकाश की ओर चलनेवाला व्यक्ति) इतना ही लाभ लेने का प्रयत्न करता है कि इसकी क्रियाशीलता बनी रहे, अर्थात् यह रजोगुण उसे सत्त्वगुण में आगे बढ़ने में सहायक हो।

भावार्थ—हम अपने अन्दर विविध वर्ण की वृत्तियों को जानकर तामसीवृत्ति को दूर करें, सात्त्विक वृत्ति को अधिकाधिक पवित्र करते हुए राजसी वृत्ति को उसकी सहायिका बनाएँ, अर्थात् रजोगुण के कारण सत्त्वगुण क्रियाशील बना रहे और हम सात्त्विक भावों में आगे बढ़ते चलें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतयः, कृतिः**॥

प्राच्यै दिशे

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेऽधिपतयेऽसिताय रक्षित्र आदित्यायेषुमते।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे
नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम॥ ५५॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **एतं त्वा**=इस तुझको **प्राच्यै दिशे परिदद्मः**=उस प्राची दिशा के लिए—आगे बढ़ने की दिशा के लिए (प्र अञ्च्) देते हैं—अर्पित करते हैं, जिस दिशा का **अग्नये अधिपतये**=अधिपति अग्नि है। अग्रगति का अधिपति ही अग्नि कहलाता है। इस दिशा

का **रक्षित्रे असिताय**=रक्षिता असित है—'अ-सित'=अबद्ध, जो विषयों की शृंखला से बद्ध नहीं हो गया। **आदित्याय इषुमते**=यह दिशा आदित्यरूप प्रेरणावाली है। इस दिशा में उदित हुआ-हुआ सूर्य निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा है। **नः**=हमसे दी गई **तम्**=उस प्राची दिशा की स्थिति को **गोपायत**=तब तक सुरक्षित रक्खो, **अस्माकम् आ एतोः**=जब तक कि हमारे समीप तुम सर्वथा पहुँच नहीं जाते (एतोः=आगमनात्)। जीव प्रार्थना करता है कि **दिष्टम्**=दैव अथवा प्रभु का यह निर्देश **नः**=हमें **अत्र**=इस प्राची दिशा में—अग्रगति के मार्ग में **जरसे**=प्रभुस्तवन के लिए **निमेषत्**=प्राप्त कराए। हम प्रभुस्तवन करते हुए निरन्तर आगे बढ़ें तथा **जरा**=यह प्रभुस्तवन ही **नः**=हमें **मृत्यवे**=मृत्यु के लिए **परिददातु**=दे। प्रयाणकाल में प्रभुस्मरण करते हुए ही हम प्राणों का त्याग करें। **अथ**=अब **पक्वेन**=सदा परिपक्व प्रभु के **सह सम्भवेम**=साथ स्थिति को प्राप्त करें—प्रभु के साथ विचरनेवाले बनें।

भावार्थ—प्रभु हमें अग्रगति करते हुए 'अग्नि' बनने का उपदेश देते हैं। इस अग्रगति के रक्षण के लिए हम विषयों से बद्ध न हों और सूर्य से निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा लें। यह अग्रगति के मार्ग में प्रभुस्तवन करें। प्रभुस्तवन करते हुए ही जीवन के अन्तिम प्रयाण में प्राणों को छोड़ें और प्रभु के साथ विचरनेवाले बनें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतयः**॥

दक्षिणायै दिशे

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे
नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम॥ ५६॥

१. प्रभु कहते हैं कि **एतं त्वा**=इस तुझको **दक्षिणायै दिशे**=दाक्षिण्य की दिशा के लिए अर्पित करते हैं, जिस दिशा में **इन्द्राय अधिपतये**=इन्द्र अधिपति है। दाक्षिण्य का अधिपति इन्द्र है—परमैश्वर्यवाला है। किसी भी कार्य में दाक्षिण्य परमैश्वर्य को प्राप्त कराता ही है। **तिरश्चिराजये रक्षित्रे**=इस दाक्षिण्य की रक्षक पशु-पक्षियों की पंक्ति है। प्रभु ने चील में आदर्श उड़ान को स्थापित किया है, मधुमक्षिका में शहद के निर्माण की शक्ति को तथा सिंह में तरण के दाक्षिण्य को। मनुष्य इनसे प्रेरणा प्राप्त करता है। यह दिशा **यमाय इषुमते**=यमरूप प्रेरणावाली है। हमारे जीवनों के नियन्ता 'माता, पिता व आचार्य' दाक्षिण्य को प्राप्त करने की प्रेरणा दे रहे हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—निरन्तर आगे बढ़ते हुए हम दाक्षिण्य को प्राप्त करेंगे। इस दाक्षिण्य से हम इन्द्र=ऐश्वर्यशाली होंगे। इस दाक्षिण्य की रक्षा के लिए पशु-पक्षियों को स्थापित किया है। नियन्ता आयार्च आदि हमें इसके लिए प्रेरित करता है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः, ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतयः, कृतिः**॥

प्रतीच्यै दिशे

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणायाधिपतये पृदाकवे रक्षितेऽन्नायेषुमते।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे
नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम॥ ५७॥

१. प्रभु कहते हैं कि **एतं त्वा**=इस तुझको **प्रतीच्यै दिशे**=(प्रति अञ्च्) वापस लौटने की दिशा के लिए अर्पित करते हैं—यह दिशा प्रत्याहार की दिशा है—इन्द्रियों को विषयों से व्यावृत्त करने की दिशा है। **वरुणाय अधिपतये**=इस दिशा का अधिपति वरुण है—विषयों से अपना निवारण करनेवाला। **पृदाकवे रक्षित्रे**=(पृ-दा-कु) पालन व पूर्ण के लिए सब अन्न को देनेवाली पृथिवी इस प्रत्याहार की रक्षिका है—यह अपने से दूर फेंके गये सब पदार्थों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। **अन्नाय इषुमते**=अन्न ही इस दिशा की प्रेरणा दे रहा है कि प्रत्यहार के अभाव में, हे मनुष्यो! तुममें मुझे खा सकने का सामर्थ्य भी न रहेगा। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—दाक्षिण्य से ऐश्वर्य प्राप्त करके हमें बड़ा सावधान होने की आवश्यकता है। कहीं हम इस ऐश्वर्य के कारण विषयों का शिकार न हो जाएँ, अतः यह 'प्रतीची' हमें प्रत्याहार का पाठ पढ़ाती है। हम पढेंगे तो वरुणः=श्रेष्ठ बनेंगे। यह भूमिमाता निरन्तर प्रत्याहार में लगी है। अन्न भी हमें प्रत्याहार की प्रेरणा देता हुआ कहता है कि प्रत्याहार के अभाव में 'तुम मुझे न खाओगे, मैं ही तुम्हें खा जाऊँगा'।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतयः, कृतिः**॥

उदीच्यै दिशे

उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै।
एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र जरसे
नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम॥ ५८॥

१. प्रभु कहते हैं कि अब प्रत्याहार का पाठ पढ़ने पर **एतं त्वा**=इस तुझको **उदीच्यै दिशे**=(उत् अञ्च्) इस ऊपर उठने की—उन्नति की दिशा के लिए सौंपते हैं। प्रत्याहार के होन पर ही उन्नति सम्भव होती है। इस **सोमाय अधिपतये**=दिशा का अधिपति सोम है—सौम्य=विनीत। विनीतता ही उत्थान का कारण बनती है 'नम्रत्वेनोन्नतिमन्तः'। **स्वजाय रक्षित्रे**=(सु अज) उत्तमता से गतिमय होनेवाला, कर्त्तव्य-कर्मों में लगे रहनेवाला व्यक्ति ही उन्नति की दिशा का रक्षक है। **अशन्यै इषुमत्यै**=(अशनिः=fire) निरन्तर ऊर्ध्व जलनेवाली अग्नि इसी उन्नति की दिशा की प्रेरणा दे रही है। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रत्याहार का पाठ हमें उन्नति की दिशा में चलने योग्य बनाएगा। यदि हम सौम्य बने रहेंगे तभी उन्नति के अधिपति भी होंगे। निरन्तर क्रियाशीलता इस उन्नति का रक्षण करेगी और ऊर्ध्वज्वलनवाली अग्नि हमें निरन्तर उन्नति की प्रेरणा देती है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतयः, कृतिः**॥

ध्रुवायै दिशे

ध्रुवायै त्वा दिशे विष्णवेऽधिपतये कल्माषग्रीवाय रक्षित्र ओषधीभ्य
इषुमतीभ्यः। एतं परि दद्मस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः। दिष्टं नो अत्र
जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम॥ ५९॥

१. उन्नति के मार्ग पर चलनेवाले के लिए प्रभु निर्देश करते हैं कि **एतं त्वा**=इस तुझे **ध्रुवायै दिशे**=ध्रुवा दिशा के लिए अर्पित करता हूँ। तूने जीवन में ध्रुव बनना है—स्थिरवृत्ति का। डाँवाडोल वृत्तिवाला व्यक्ति कभी उन्नति नहीं करता। **विष्णवे अधिपतये**=विष्णु इस दिशा का

अधिपति है—व्यापक उन्नति करनेवाला। यह 'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों को स्वस्थ बनाकर सब क्षेत्रों में उन्नतिवाला होता है। **कल्माषग्रीवाय रक्षित्रे**=इस ध्रुवा दिशा का रक्षिता कल्माषग्रीव है—विविध विज्ञानों से चित्रित कण्ठवाला। **ओषधीभ्यः इषुमतीभ्यः**=सब दोषों का दहन करनेवाली ये ओषधियाँ इस ध्रुवता की प्रेरणा दे रही हैं। दोषों का दहन करके हम उन्नति की ध्रुव नींव डालते हैं। शेष पूर्ववत्०

भावार्थ—उन्नति की स्थिरता के लिए ध्रुवता नितान्त आवश्यक है। इस ध्रुवता का अधिपति विष्णु है—'शरीर, मन व मस्तिष्क' तीनों को स्वस्थ बनानेवाला। विविध विज्ञानों से चित्रित कण्ठवाला व्यक्ति इस ध्रुवता का रक्षक है। 'ध्रुवता से ही दोषों का दहन होगा,' ओषधियाँ यह प्रेरणा दे रही हैं। ओषधियाँ दोषों का दहन तो करती ही हैं (उष दाहे)।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**स्वर्गः ओदनः, अग्निः**॥ छन्दः—**सप्तपदाः शङ्कुमत्योऽतिजागतशाक्वरातिशाक्वरधार्त्यगर्भातिधृतयः, कृतिः**॥

ऊर्ध्वायै दिशे

ऊ॒र्ध्वायै॑ त्वा दि॒शे बृ॒हस्प॑त॒येऽधि॑पतये श्वि॒त्राय॑ रक्षि॒त्रे व॒र्षायेष॑मते।
ए॒तं परि॑ दद्मस्तं नो॑ गोपाय॒तास्माक॒मैतो॑:। दि॒ष्टं नो॒ अत्र॑ ज॒रसे॒
नि ने॑षज॒रा मृ॒त्यवे॒ परि॑ णो ददा॒त्वथ॑ प॒क्वेन॑ स॒ह सं भ॑वेम॥ ६०॥

१. **एतं त्वा**=इस ध्रुववृतिवाले तुझ पुरुष को **ऊर्ध्वायै दिशे**=ऊर्ध्वा दिक् के लिए देते हैं—तू उन्नति के शिखर पर पहुँचनेवाला बन। **बृहस्पतये अधिपतये**=इस दिशा का अधिपति बृहस्पति है—ब्रह्मणस्पति=ज्ञान का स्वामी। यह ज्ञान का स्वामी सर्वोच्च स्थिति में है। **श्वित्राय रक्षित्रे**=ज्ञान के द्वारा शुद्ध जीवनवाला इस सर्वोच्च स्थिति का रक्षक है। **वर्षाय इषुमते**=उस स्थिति में—धर्ममेघ समाधि में अन्दर से होनेवाली आनन्द की वृष्टि इस ऊर्ध्वादिक् में पहुँचने के लिए प्रेरणा देती है। जितना-जितना हम ऊर्ध्वादिक् में स्थिर होंगे उतना-उतना ही आनन्द अनुभव होगा। शेष पूर्ववत्०

भावार्थ—ध्रुवता हमें सर्वोच्च स्थिति में पहुँचाती है। इस स्थिति का अधिपति बृहस्पति है—ज्ञानी है। शुद्ध जीवनवाला इस स्थिति का रक्षण करता है तथा आनन्द की वृष्टि का अनुभव हमें यहाँ पहुँचने की प्रेरणा देता है।

यह बृहस्पति ही 'कश्यप' है—पश्यक। यही अगले सूक्त का ऋषि है। यह सब भूतों को अपने वश में करनेवाला होता है, अतः 'वशा' अगले सूक्त का देवता (विषय) है। सबको अपने वश में करने का साधन यह कमनीय वेदवाणी बनती है। वस्तुतः वेदवाणी ही कमनीय (चाहने योग्य) व ज्ञानदुग्ध को देनेवाली 'वशा' है—

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्रह्म-दान

ददा॒मीत्ये॒व ब्रू॑या॒दनु॒ चैना॒मभु॑त्सत।
व॒शां ब्र॒ह्मभ्यो॒ याच॑द्भ्य॒स्तप्र॒जाव॒दप॑त्यवत्॥ १॥

१. **याचद्भ्यः ब्रह्मभ्यः**=याचना करनेवाले ब्राह्मणों (ज्ञान के पिपासुओं) के लिए **'ददामि' इति एव ब्रूयात्**='देता हूँ' ऐसा ही कहे, अर्थात् ज्ञान देने में कभी संकोच व निषेध न करे **च**=और **एनाम्**=इस **वशाम्**=वेदवाणी को **अनु अभुत्सत**=आचार्यों की अनुकूलता में—उनके

निर्देशानुसार आचरण करते हुए जानें। २. **तत्**=वह ज्ञान देने व प्राप्त करने का कार्य **प्रजावत्**=राष्ट्र में उत्तम प्रजाओंवाला व **अपत्यवत्**=परिवारों में उत्तम सन्तानोंवाला होता है। ज्ञान के प्रसार से प्रजा व सन्तान उत्तम बनते है।

भावार्थ—चाहनेवाले ज्ञान-पिपासुओं के लिए यह वेदज्ञान देना ही चाहिए। आचार्य के निर्देशानुसार कार्य करते हुए हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान-प्रसार प्रजाओं व सन्तानों के जीवनों को उत्तम बनाता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

देवों की गौ

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति॥ २॥

१. प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में इस वेदवाणीरूप गौ को 'अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा' इन देवों को प्राप्त कराया, अतः यह वेदधेनु 'देवों की गौ' कहलाती है। इस **देवानां गाम्**=देवधेनु को **यः**=जो **याचद्भ्यः**=याचना करनेवाले **आर्षेयेभ्यः**=ऋषि सन्तानों के लिए—पवित्राचरण जिज्ञासुओं के लिए **न दित्सति**=नहीं देना चाहता है, **सः**=वह **प्रजया विक्रीणीते**=प्रजा के साथ अपने को बेच डालता है, अर्थात् ऐसा राष्ट्र परतन्त्र हो जाता है **च**=और **पशुभिः उपदस्यति**=वह पशुओं से क्षीण हो जाता है। ऐसे राष्ट्र में गवादि पशु भी उत्तम दूध आदि देनेवाले नहीं रहते।

भावार्थ—जिस राष्ट्र में राजा वेदज्ञान के प्रसार के लिए प्रयत्नशील नहीं होता वह राष्ट्र परतन्त्र और उत्तम पशुओं से रहित हो जाता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

साङ्ग वेदाध्ययन

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम्॥ ३॥

१. **कूटया**=(कूट दानाभावे to abstain from giving) वेदवाणी के न देने से **अस्य संशीर्यन्ते**=इस राष्ट्र के पुरुष शीर्ण (नष्ट) हो जाते हैं। (कूटा A cow whose horns are broken) (शिक्षा प्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणं स्मृतम्। निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते) **कूटया**='शिक्षा, व्याकरण व निरुक्त' के बिना वेदवाणी से **अस्य सं शीर्यन्ते**=इस राष्ट्र के पुरुष शीर्ण ही होते हैं। **श्लोणया**=(Cripple छन्दः पादौ तु वेदस्य 'शिक्षा') छन्दोरहित अतएव लंगड़ी वेदवाणी से **काटम् अर्दति**=(अर्द गतौ, कम् well) कूएँ में पड़ता है, अर्थात् वेदवाणी को छन्दों के ज्ञान के साथ ग्रहण करने से ही उसका ठीक भाव अवगत होता है। २. **बण्डया**=(A cow without a tail) (हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते) कल्पमय हाथों से रहित लूली वेदवाणी से **गृहाः दह्यन्ते**=घर भस्म हो जाते हैं। 'कल्प' अनुष्ठान का प्रतिपादन करते हैं। यदि वेदों को पढ़कर भी तद्विहित यज्ञों का अनुष्ठान न होगा तो घरों का क्या कल्याण होना? **काणया**= (ज्योतिषमयनं चक्षुः, निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते) ज्योतिष के ज्ञान से रहित वेदवाणी से **स्वं दीयते**=ज्ञानधन का विनाश ही होता है (दी क्षये), अर्थात् वेद को ठीक प्रकार से समझने के लिए ज्योतिष (नक्षत्रविद्या) को समझना भी आवश्यक है।

भावार्थ—वेदवाणी को ठीक से समझने के लिए 'शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द व ज्योतिष' इन अङ्गों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम्।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे॥ ४॥

१. **अधिष्ठानात्**=इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनने से—इन्द्रियरूप अश्वों पर आरूढ़ होने से **विलोहितः**=विशिष्टरूप से तेजस्वी **शक्रः**=शक्तिशाली पुरुष **गोपतिम् विन्दति**=ज्ञान की वाणियों (वेदवाणियों) के स्वामी को प्राप्त होता है। इस गोपति को प्राप्त करके यह भी ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करनेवाला होता है **तथा**=इसीप्रकार, अर्थात् जितेन्द्रिय (ब्रह्मचारी) बनकर आचार्य-चरणों में उपस्थित होने से ही **वशायाः**=इस वेदवाणी का **संविद्यम्**=समयक् ज्ञान होता है। हे वशे! तू **हि**=निश्चय से **दुरदभ्ना उच्यसे**=(दुर् अदभ्ना) बुराइयों से न दबाई जानेवाली कही जाती है। जहाँ वेदवाणी का अध्ययन होता है, वहाँ बुराइयों का प्रवेश नहीं।

भावार्थ—वेदाध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। जहाँ वेदाध्ययन है, वहाँ बुराइयों का प्रवेश नहीं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विक्लिन्दुः

पदोरस्या अधिष्ठानाद्विक्लिन्दुर्नाम विन्दति।
अनामनात्संशीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति॥ ५॥

१. **अस्याः**=इस वेदवाणी के **पदोः**=ज्ञान-विज्ञानरूप पाँवों में **अधिष्ठानात्**=अधिष्ठित होने से, अर्थात् वेदवाणी के द्वारा विज्ञान-सहित ज्ञान को प्राप्त करने पर मनुष्य **विक्लिन्दुः**=(क्लिदि रोदने शोके च) सब प्रकार के शोक से ऊपर उठा हुआ **नाम विन्दति**=यश को प्राप्त करता है। २. परन्तु **अनामनात्**=इन वाणियों का मनन न करने से लोग **संशीर्यन्ते**=नष्ट हो जाते हैं। **याः**=जिन वाणियों को **मुखेन उपजिघ्रति**=केवल मुख से सूँघता है, अर्थात् जिन वाणियों को केवल मुख से बोलता हुआ, समझने का प्रयत्न नहीं करता, वे वाणियाँ इसका कल्याण नहीं करतीं।

भावार्थ—वेदवाणी द्वारा ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करके हम शोकातीत होकर यशस्वी होते हैं। इनके न समझने—केवल उच्चारण से कल्याण नहीं। समझने पर उन्हें आचरण में लाएँगे और कल्याण को प्राप्त करेंगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदज्ञता के आडम्बर का अभाव

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम्॥ ६॥

१. **यः**=जो **अस्याः**=इस वेदवाणी के **कर्णौ आस्कुनोति**=(निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते) निर्वचनरूप कानों को आवृत किये रखता है, अर्थात् वेदशब्दों का निवर्चन नहीं करता, **सः**=वह **देवेषु**=विद्वानों में **आवृश्चते**=छिन्न हो जाता है। इस व्यक्ति का परिगणन विद्वानों में नहीं रहता, चूँकि निर्वचन के अभाव में यह वेदों का असंगत अर्थ करता है। २. जो व्यक्ति **'लक्ष्म कुर्वे' इति मन्यते**=ऐसा समझता है कि मैं इस वेदवाणी को अपना 'चिह्न' (पदवी) बनाता हूँ, अर्थात् जो वेदवाणी को पढ़ने के स्थान पर उसका आडम्बर अधिक करता है, वह **स्वं कनीयः कृणुते**=अपने वास्तविक

ऐश्वर्य को न्यून करता है। दिखावे से उसकी वेदज्ञता कलंकित हो जाती है।

भावार्थ—हमें निर्वचन द्वारा वेदशब्दों के मर्म को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। वेदज्ञता के आडम्बर की अपेक्षा वेद को समझने का अधिक प्रयत्न करना चाहिए तभी हम देव बनेंगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वत्सान् घातुकः 'वृकः'

यदस्याः कस्मैचिद्भोगाय बालान्कश्चित्प्रकृन्तति।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ ७ ॥

१. **यत्**=जब **कस्मैचित् भोगाय**=किसी सांसारिक भोग-विलास के दृष्टिकोण से **कश्चित्**=कोई व्यक्ति **बालान्**=अपने छोटे बच्चों को **अस्याः प्रकृन्तति**=इस वेदवाणी से विच्छिन्न करता है, अर्थात् इसप्रकार सोचकर कि 'वेद पढ़कर क्या करेगा? क्या कमा पाएगा?' वह अपने सन्तानों को वेद न पढ़ाकर अन्य मार्गों पर ले-जाता है, **ततः**=तब **किशोराः म्रियन्ते**=वे युवक विलासवृत्ति के शिकार होकर युवावस्था में ही मर जाते हैं। २. वस्तुतः इस दिशा में सोचनेवाला व्यक्ति अपने **वत्सान्**=सन्तानों को **घातुकः**=मारनेवाला **वृकः**=भेड़िया ही होता है। वह सन्तानों का कल्याण नहीं कर पाता।

भावार्थ—माता-पिता को चाहिए कि वे अपने सन्तानों को वेद अवश्य पढ़ाएँ। 'वेद पढ़ाने से उतना रुपया न कमा पाएगा' यह सोचकर वेद न पढ़ानेवाला पिता एक वृक के समान है जोकि अपने सन्तानरूप वत्सों को मारता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदत्याग से रोग व मृत्यु

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत्।
ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ ८ ॥

१. **गोपतौ**=ज्ञान की वाणियों के रक्षक विद्वान् पुरुष में **सत्याः अस्याः**=विद्यमान इस वेदवाणी के **लोम**=(लूञ् छेदने) वासना विच्छेदनरूप कर्म को **यत्**=जब **ध्वांक्षः**=(ध्वाक्षि घोरवाशिते) व्यर्थ के कर्कश शब्द बोलनेवाला—कां कां बोलनेवाला व्यक्ति **अजीहिडत्**=घृणा से देखता है, अर्थात् 'वेदवाणी वासना का विच्छेद करती है' इस बात का उपहास करता है, **ततः**=तब **कुमाराः**=उस घर में आनेवाली सन्तानें **म्रियन्ते**=छोटी उम्र में ही मर जाती हैं। २. **अनामनात्**=इस वेदवाणी का अभ्यास व मनन न करने से **यक्ष्मः विन्दति**=घरवालों को रोग प्राप्त होता है। जब घर में वेदवाणी का स्थान भोग-विलास ले-लेता है, तब उस घर में रोगों का आना स्वाभाविक ही है।

भावार्थ—'वेदवाणी के रक्षक विद्वान् के जीवन में यह वेदवाणी वासनाओं का विच्छेद करती है', जब इस बात का उपहास करके वेद का त्याग होता है तब असमय की मृत्यु व रोगों का आक्रमण होता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेद की अवज्ञा से अपरूपता

यदस्याः पल्पूलनं शकृद्दासी समस्यति। ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्यैष्यदेनसः ॥ ९ ॥

१. **यत्**=जब **अस्याः**=इस वेदवाणी के **शकृत्**=(शं करोति शंकृत्=शकृत्) शान्ति देनेवाले अथवा (शक्) शक्ति देनेवाले **पल्पूलनम्**=(पल गतौ, पूर संघाते) ज्ञान-समूह को **दासी**=(दसु

उपक्षये) ज्ञान का हिंसन करनेवाली, ज्ञान में अरुचिवाली प्रजा **समस्यति**=अपने से दूर फेंकती है, **ततः**=तब **तस्माद् एनसः**=उस ज्ञानहिंसनरूप पाप से **अव्येष्यत्**=(अ वि एष्यत्) पृथक् न होता हुआ अपत्यवर्ग **अपरूपं जायते**=कुरूप हो जाता है। २. भोग-विलास की प्रवृत्ति में पड़कर वह अपनी शकल ही बिगाड़ लेता है। यदि वेदज्ञान को अपने से परे नहीं फेंकता तो यह वेदज्ञान उसे 'शान्ति व शक्ति' प्राप्त करनेवाला होता है।

भावार्थ—वेदज्ञान की अवज्ञा एक ऐसा पाप है जो हमें 'अशक्त व अपरूप' बना देता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्राह्मण+देव

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान्वशा।
तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम्॥ १०॥

१. **जायमाना**=सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु से प्रादुर्भूत होती हुई **वशा**=यह वेदवाणी **सब्राह्मणान् देवान्**=ब्राह्मणोंसहित देवों के प्रति **अभिजायते**=प्रादुर्भूत होती है, अर्थात् वेदज्ञान का पात्र ज्ञान की रुचिवाला (ब्राह्मण) देववृत्तिवाला पुरुष (देव) ही होता है। २. **तस्मात्**=इसलिए **एषा**=यह वेदवाणी **ब्रह्मभ्यः देया**=ज्ञान की रुचिवाले पुरुषों के लिए दी जानी चाहिए। **तत्**=उस वशा के दानरूप कर्म को **स्वस्य गोपनम् आहुः**=अपने ज्ञानैश्वर्य का रक्षण ही कहते हैं, अर्थात् ज्ञान देनेवाला व्यक्ति अपने ज्ञानैश्वर्य को बढ़ा ही रहा होता है।

भावार्थ—हमें ज्ञानरुचि व देववृत्तिवाला बनकर वेदज्ञान का पात्र बनना चाहिए। वेदज्ञान को प्राप्त करके हम औरों के लिए इसे देनेवाले बनें। इसप्रकार ही हम अपने ज्ञानैश्वर्य का रक्षण करते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्रह्मज्येयम्

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा। ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन्य एनां निप्रियायते॥ ११॥

१. **ये**=जो **एनाम्**=इस **वनिम् आयन्ति**=संभजनीय वेदवाणी को सब प्रकार से प्राप्त करते हैं, यह **देवकृता वशा**=प्रभु से उत्पन्न की गई कमनीय वेदवाणी **तेषाम्**=उनकी ही है। वेदवाणी उन्हें ही प्राप्त होती है, जो इसे चाहते हैं, २. परन्तु **यः एनाम्**=जो इस वेदवाणी को **निप्रियायते**=नीचभाव से (नि) अपना ही प्रिय धन मानकर छिपा रखता है, उसके **तत्**=उस कार्य को **ब्रह्मज्येयं अब्रुवन्**=ज्ञान का हिंसन कहते हैं (ज्या वयहानौ)। ज्ञान को पात्रों में देना ही उचित है। यही इस ज्ञानधन के रक्षण का उपाय है।

भावार्थ—ज्ञान के प्रबल इच्छुकों को ही यह वेदज्ञान प्राप्त होता है। पात्रों में इस ज्ञान का अदान, इस ज्ञान का हिंसन है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वेदज्ञान के अदान से अशुभवृतियाँ

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति।
आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे॥ १२॥

१. **यः**=जो **याचद्भ्यः**=ज्ञानकी याचना करते हुए **आर्षेयेभ्यः**=(ऋषिः वेदः) वेदप्रिय व्यक्तियों के लिए **देवानाम्**=देववृत्ति के पुरुषों को प्राप्त होनेवाली इस **गाम्**=वेदवाणीरूप गौ को **न दित्सति**=नहीं देना चाहता, **सः**=वह **देवेषु आवृश्चते**=दिव्यगुणों के विषय में छिन्न हो जाता

है, अर्थात् दिव्यगुणों से रहित हो जाता है **च**=और **ब्राह्मणानाम्**=ज्ञानरुचि पुरुषों के **मन्यवे**=क्रोध के लिए होता है—ज्ञानरुचि पुरुषों का वह प्रिय नहीं रहता।

भावार्थ—जो चाहते हुए वेदप्रिय पुरुषों के लिए वेदज्ञान को नहीं देता, वह अपने-आपको दिव्यगुणों से छिन्न कर लेता है और ज्ञानरुचि पुरुषों का प्रिय नहीं रहता।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वशाभोगः

यो अस्य॒ स्याद्व॑शाभो॒गो अ॒न्यामि॑च्छेत॒ तर्हि॒ सः।
हिंस्ते अद॑त्ता॒ पुरु॑षं या॒चि॒तां च॒ न दित्स॑ति॥ १३॥

१. **यः**=जो **अस्य**=इस **वशाभोगः स्यात्**=कमनीय वेदवाणी का पालन (भुज् पालने) हो ऐसा चाहे, अर्थात् यदि यह अपने समीप वेदवाणी का रक्षण चाहे, **तर्हि**=तो **सः**=वह **अन्याम्**=जीवन का पालन करनेवाली दूसरी वृत्ति (जीविका) को **इच्छेत्**=चाहे। वेदवाणी को जीविका-प्राप्ति का साधन न बनाये। २. **याचितां च**=माँगी हुई वृत्ति को भी **न दित्सति**=यदि यह देना नहीं चाहता, तो **अदत्ता**=न दी हुई यह वेदवाणी **पुरुषं हिंस्ते**=उस वेदज्ञ पुरुष को हिंसित कर देती है।

भावार्थ—वेदज्ञ पुरुष को चाहिए कि वेदज्ञान के इच्छुक के लिए वेदवाणी को दे ही। वह इसे आजीविका-प्राप्ति का साधन न बनाये। यदि वेदज्ञ वेदज्ञान को औरों के लिए नहीं देता तो वह वेदज्ञान उसका ही हिंसन कर देता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वेदज्ञानरूप शेवधि

यथा॑ शे॒व॒धिर्नि॑हि॒तो ब्राह्म॒णानां॑ तथा॑ व॒शा।
तामे॒तद॒च्छाय॑न्ति॒ यस्मि॒न्कस्मि॑ंश्च॒ जाय॑ते॥ १४॥

१. **यथा**=जैसे **शेवधिः निहितः**=किसी पुरुष का कोश सम्यक् स्थापित किया जाता है, **तथा**=उसीप्रकार **वशा**=यह कमनीय वेदवाणी **ब्राह्मणानाम्**=ब्राह्मणों का कोश है। ब्राह्मण का वास्तविक कोश यह 'वेदवाणी' ही है। **एतत्**=(एतस्मात्) इस कारण से **यस्मिन् कस्मिन् च**=जिस किसी में भी वेदवाणी का प्रादुर्भाव हो, **ताम् अच्छ आयन्ति**=वहीं उस वेदवाणी की ओर से ब्राह्मण आते हैं, अर्थात् वेदवाणी के ग्रहण के लिए, जहाँ भी इसके मिलने का सम्भव हो, वहीं ये ब्राह्मण पहुँच जाते हैं।

भावार्थ—'वेदवाणी' ब्राह्मण का वास्तविक कोश है। जिस किसी भी पुरुष से इसकी प्राप्ति सम्भव होती है, ये ब्राह्मण उसे प्राप्त करने के लिए वहीं पहुँच जाते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्राह्मण का 'स्व' (वेदवाणी)

स्वमे॒तद॒च्छाय॑न्ति॒ यद्व॒शां ब्रा॑ह्म॒णा अ॒भि।
यथै॑ना॒न॒न्यस्मि॑ञ्जिनी॒याद॒देवास्या॑ नि॒रोध॑नम्॥ १५॥

१. **यत्**=जो **ब्राह्मणाः**=ज्ञानी पुरुष **वशाम् अभि आयन्ति**=वेदवाणी की ओर आते हैं **एतत्**=ये **स्वम् अच्छ (आयन्ति)**=अपने ऐश्वर्य की ओर आते हैं। ब्राह्मणों का ऐश्वर्य वेदवाणी ही तो है। २. **यथा**=जिस प्रकार (चूँकि) **अस्याः निरोधनम्**=इस वेदवाणी का रोक देना, अर्थात् वेदवाणी को छोड़कर अन्य कर्मों में प्रवृत्त होना **एनान्**=इन ब्राह्मणों को **अन्यस्मिन् जिनीयात् एव**=अन्य व्यापार आदि कर्मों में हिंसित ही करता है। यदि एक ब्राह्मण धन के लोभ में वेदवाणी

को छोड़कर अन्य कार्यों में प्रवृत्त होता है तो उसके वे व्यापार आदि कर्म हिंसित ही होते हैं।

भावार्थ—ब्राह्मण का धन 'वेदवाणी' ही है। यदि यह वेदाध्ययन विमुख होकर व्यापार में लगेगा तो यह वेदवाणी का निरोधरूप पाप उसके व्यापार को असफल बनाएगा।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

आ त्रैहायणात्

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥

१. **अविज्ञातगदा सती**=नहीं जाना गया है स्पष्ट उच्चारण (गद) जिसका, ऐसी होती हुई भी यह वेदवाणी **आ त्रैहायणात्**=तीन वर्ष की आयु से प्रारम्भ करके **चरेत् एव**=हमारे जीवन में विचरण करे ही। तीन वर्ष की आयु से ही हम इसे पढ़ना प्रारम्भ कर दें। १. हे **नारद**=नर सम्बन्धी 'शरीर, मन, इन्द्रियाँ व बुद्धि' को शुद्ध करनेवाले जीव! (नरसम्बन्धिनं नारं दायति—द्वैप् शोधने) **वशां च विद्यात्**=जब इस वेदवाणी को कुछ जान जाए—तद्गत मन्त्रों को याद कर ले—**तर्हि**=तो **ब्राह्मणाः एष्याः**=अब ब्रह्मवेत्ता विद्वान् अन्वेषण के योग्य हैं, अर्थात् ज्ञानी ब्राह्मणों के समीप उपस्थित होकर उनसे वेदार्थ को जानना चाहिए।

भावार्थ—तीन वर्ष की आयु से ही हम वेदों का स्मरण प्रारम्भ कर दें और अब स्मरणानन्तर ज्ञानी ब्राह्मणों के समीप पहुँचकर इसे समझने का प्रयत्न करें। इस प्राकर ही हमारा जीवन शुद्ध बनेगा।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

भवाशर्वौ

य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम्।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥

१. **यः**=जो **एनाम्**=इस वेदवाणी को **अवशाम् आह**=न कमनीया—न चाहने योग्य कहता है और ऐसा नहीं समझता कि यह वेदवाणी तो **देवानां निहितं निधिम्**=देवों का प्रभु द्वारा हृदय में स्थापित ज्ञानकोश है, **तस्मै**=उसके लिए **उभौ**=दोनों **भवाशर्वौ**=भव और शर्व उत्पत्ति व संहार—जन्म और मरण **परिक्रम्य**=परिक्रमा करके **इषुम् अस्यतः**=बाण फेंकते हैं, अर्थात् इसे जन्म और मरण पीड़ित किये रहते हैं। यह बारम्बार जन्म लेता है और मरण का शिकार होता है—जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है।

भावार्थ—ज्ञान के कोश को कमनीय न माननेवाला व्यक्ति ज्ञान से दूर रहता हुआ जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ऊधः+स्तनान्

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद्वशाम् ॥ १८ ॥

१. **यः**=जो **अस्याः**=इस वेदधेनु को **ऊधः न**=(न as, like) दुग्धाशय के समान समझता है। **उत अथो**=और अब **अस्याः**=इस वेदधेनु के **स्तनान्**=स्तनों को **वेद**=जानता है। उन स्तनों से ज्ञानदुग्ध का दोहन करता है तो यह वेदधेनु **अस्मै**=इस दोग्धा के लिए **उभयेन एव**=इहलोक व परलोक दोनों के हेतु से **दुहे**=ज्ञानदुग्ध का प्रपूरण करती है। यह दोग्धा वेदधेनु से ज्ञानदुग्ध

प्राप्त करके दोनों लोकों का कल्याण सिद्ध करता है। यह उसे अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों को प्राप्त करानेवाली होती है, परन्तु यह सब होता तभी है **चेत्**=यदि यह **वशाम्**=इस कमनीय वेदवाणी को **दातुं अशकत्**=औरों के लिए देने में समर्थ होता है।

भावार्थ—हम वेदधेनु के दुग्धाशय व स्तनों को प्राप्त करके ज्ञानदुग्ध का दोहन करें। इस ज्ञान को औरों के लिए देनेवाले बनें। यह ज्ञान हमें अभ्युदय व निःश्रेयस देनेवाला होगा।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

दुरदभ्ना

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति॥ १९॥

१. **दुरदभ्ना**=कभी न दबनेवाली यह वशा (वेदवाणी) **एनम्**=इस व्यक्ति में **आशये**=निवास करती है **च**=और फिर भी **याचितां न दित्सति**=माँगी हुई को यह देना नहीं चाहता, अर्थात् यदि कोई उस वेदज्ञान को प्राप्त करने के लिए उसके समीप आता है और यह उसे देता नहीं तो **अस्मै**=इसके लिए **कामाः न समृध्यन्ते**=इष्ट वस्तुएँ समृद्ध नहीं होती—इसकी कामनाएँ पूर्ण नहीं होती। २. **याम्**=जिस भी कामना को यह **अदत्त्वा**=वेदवाणी को न देकर **चिकीर्षति**=करना चाहता है, उसमें यह असफल ही हो जाता है। वेदवाणी का ज्ञान न देकर यदि यह किन्हीं अन्य व्यापार आदि में प्रवृत्त होता है, तो उसमें असफल ही हो जाता है।

भावार्थ—हमें वेदज्ञान प्राप्त हो तो हम उसके प्रसार के लिए सदा यत्नशील हों। इसका प्रसार न करके अन्य व्यापारों में प्रवृत्त होंगे तो हमारे वे व्यापार समृद्ध न होंगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**विराडनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मणं मुखं कृत्वा

देवा वशामयाचन्मुखं कृत्वा ब्राह्मणम्।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्ये॑ति मानुषः॥ २०॥

१. **ब्राह्मणं मुखं कृत्वा**=ब्राह्मण—ब्रह्मवेत्ता को मुख बनाकर **देवाः**=देववृत्ति के व्यक्ति **वशाम्**=इस कमनीय वेदवाणी को **अयाचन्**=माँगते हैं। देव प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हम ब्राह्मणों से वेदज्ञान को प्राप्त करनेवाले बनें। २. परन्तु यदि यह **मानुषः**=ज्ञानी ब्राह्मण **तेषां सर्वेषाम् अददत्**=उन सबके लिए इस वेदज्ञान को नहीं देता तो यह **हेडं नि एति**=घृणा को निश्चय से प्राप्त करता है। यह वेदज्ञान को न देनेवाला व्यक्ति आदरणीय नहीं होता।

भावार्थ—देवलोग प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हम ब्रह्मवेत्ताओं से कमनीय वेदवाणी का ज्ञान का प्राप्त करें, परन्तु यदि कोई ब्राह्मण प्रार्थित होने पर भी इस ज्ञान को नहीं देता तो वह आदरणीय नहीं होता।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पशूनां हेडम्

हेडं॑ पशूनां न्ये॑ति ब्राह्मणेभ्योऽददद्वशाम्।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते॥ २१॥

१. **ब्राह्मणेभ्यः**=ब्रह्मज्ञान के इच्छुकों के लिए **वशाम्**=इस कमनीय वेदवाणी को **अददत्**=न देता हुआ **पशूनां हेडं नि एति**=सब प्राणियों की घृणा को निश्चय से प्राप्त करता है अथवा पशुओं का भी यह प्रिय नहीं होता—इसके गौ आदि पशु सम्पन्न-क्षीरतम नहीं होते। २. यह सब तब

होता है **चेत्**=जबकि **देवानाम्**='अग्नि, वायु, आदित्य व अङ्गिरा' आदि देवों के **निहितं भागम्**=हृदयों में प्रभु द्वारा स्थापित इस भजनीय वेदज्ञान को **मर्त्यः**=कोई मनुष्य **निप्रियायते**=नीच भाव से अपना ही प्रिय धन मानकर छिपा रखता है।

भावार्थ—हमें वेदज्ञान को प्राप्त करके अवश्य उसका प्रचार करना चाहिए। वेदज्ञान को चाहनेवालों के लिए उसे देना चाहिए। अन्यथा हम पशुओं के भी प्रिय न रहेंगे, वे हमें उत्तम दूध आदि को प्राप्त करानेवाले न होंगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'वशा' किसकी ?

यद॒न्ये श॒तं याचे॑युर्ब्राह्म॒णा गोप॑तिं व॒शाम्।
अथै॑नां दे॒वा अ॑ब्रुवन्ने॒वं ह॑ वि॒दुषो॑ व॒शा॥ २२॥

१. **गोपति**=वेदवाणी के स्वामी को चाहिए कि बड़ी उत्तमता से औरों के लिए इस वेदवाणी को देनेवाला बने। सब लोग इससे वेदवाणी को प्राप्त करना चाहें। **यत्**=जब **अन्ये**=दूसरे **शतं ब्राह्मणाः**=सैकड़ों ब्रह्म (वेदज्ञान) की प्राप्ति के इच्छुक पुरुष **एनां गोपतिम्**=इस गोपति से **वशां याचेयुः**=कमनीय वेदवाणी की याचना करें, **अथ**=अब **देवाः अब्रुवन्**=सब देववृत्ति के पुरुष कहते हैं कि **एवं ह**=ऐसा करने पर ही **विदुषः वशा**=इस ज्ञानी की यह कमनीय वेदवाणी होती है।

भावार्थ—वेदवाणी का वास्तविक स्वामी वही बनता है जो मधुरता से इसके ज्ञान को औरों के लिए देनेवाला बनता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

तस्मै पृथिवी दुर्गा

य एवं वि॒दुषेऽद॒त्वाथा॒न्येभ्यो॒ दद॑द्व॒शाम्।
दु॒र्गा तस्मा॑ अधि॒ष्ठाने॑ पृथि॒वी स॒हदे॑वता॥ २३॥

१. **अथ**=अब **यः**=जो **एवम्**=इसप्रकार (मधुरता से) **विदुषे**=एक विद्वान् के लिए—समझदार के लिए **वशाम्**=कमनीय वेदवाणी को **अदत्त्वा**=न देकर **अन्येभ्यः**=अन्य पुरुषों के लिए, धन आदि के प्रलोभन से प्रेरित होकर, **ददत्**=देता हुआ होता है, **तस्मै**=उसके लिए यहाँ **अधिष्ठाने**=घर में यह **पृथिवी**=पृथिवी **सहदेवता**=सब अग्नि, जल, वायु आदि देवों के साथ **दुर्गा**=दुःख देनेवाली (दुः गमयति) होती है।

भावार्थ—वेदवाणी का यदि धन के बदले विक्रय किया जाता है और एक विद्वान् के लिए इसे प्राप्त नहीं कराया जाता तो यह पृथिवी, अन्य सब देवों के साथ, उसके लिए कष्टप्रद हो जाती है, अर्थात् वह वेदवाणी का विक्रेता आधिदैविक आपत्तियों का शिकार होता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नारदः

दे॒वा व॒शाम॑याच॒न्यस्मि॒न्नग्रे॒ अजा॑यत।
तामे॒तां वि॒द्वान्नार॑दः स॒ह दे॒वैरुदा॑जत॥ २४॥

१. **यस्मिन्**=जिसमें **अग्रे अजायत**=सबसे प्रथम अथवा सृष्टि के प्रारम्भ में इस वेदवाणी का प्रादुर्भाव हुआ, **देवाः**=देवों ने **वशाम् अयाचन्**=उनसे इस वेदवाणी की याचना की। प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में 'अग्नि' आदि के हृदयों में इस वेदवाणी का प्रादुर्भाव किया। उनसे अन्य देवों ने इसकी याचना की और इसप्रकार गुरु-शिष्य परम्परा से इसका ज्ञान संसार में प्रसृत हुआ।

२. **ताम् एताम्**=सृष्टि के प्रारम्भ में दी गई इस वेदवाणी को **विद्यात्**=मनुष्य जानता है और **नार-दः**=नारद बनता है—नर-सम्बन्धी इन्द्रियों, मन व बुद्धि को शुद्ध करनेवाला बनता है (नरसम्बन्धिनं नारं दायति)। यह **देवैः सह**=दिव्य गुणों के साथ सम्पृक्त हुआ-हुआ **उद् आजत**=उत्कृष्ट मार्ग पर गतिवाला होता है।

भावार्थ—प्रभु ने वेदवाणी का प्रादुर्भाव अग्नि आदि के हृदयों में किया। उनसे अन्य देवों ने इस वेदज्ञान को प्राप्त किया। वेदज्ञान द्वारा वे शुद्ध इन्द्रिय व प्रशस्त मन, बुद्धिवाले बने और दिव्यगुणों के साथ उत्कृष्ट मार्ग पर गतिवाले हुए।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अनपत्य+अल्पपशु

अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम्।
ब्राह्मणैश्चेद् याचितामथैनां निप्रियायते॥ २५॥

१. यह **वशा**=कमनीया वेदवाणी **पुरुषम्**=पुरुष को **अनपत्यम्**=सन्तानरहित तथा **अल्प-पशुम्**=अल्प गवादि पशुओंवाला **कृणोति**=कर देती है, **अथ च**=यदि **ब्राह्मणैः**=ज्ञान के इच्छुक पुरुषों से **याचिता**=यह माँगी जाए और यह गोपति **एनां निप्रियायते**=इस वशा को नीच भाव से अपना ही प्रिय धन मानकर छिपा रखता है।

भावार्थ—ब्राह्मणों से प्रार्थित होने पर भी जो इस वेदवाणी को उनके लिए न देकर इसे प्रिय धन की भाँति छिपा रखता है तो वह 'अनपत्य व अल्पपशु' हो जाता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्नि, सोम, काम, मित्र, वरुण

अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत्॥ २६॥

१. **ब्राह्मणाः**=ज्ञानरुचिवाले विद्वान् **अग्निषोमाभ्याम्**=शरीर में अग्नि व सोम तत्त्व की ठीक स्थिति के लिए, **कामाय**=इष्ट पदार्थों की प्राप्ति के लिए और **मित्राय वरुणाय च**=प्राणापान के ठीक से कार्य करने के लिए **तेभ्यः**=उन ज्ञानियों से **याचन्ति**=कमनीय देववाणी की याचना करते हैं। यह वेदवाणी उन्हें अग्नि व सोम आदि को प्राप्त करानेवाली बनेगी। २. एक गोपति **अददत्**=उन ब्राह्मणों के लिए इस वेदवाणी को न देता हुआ **तेषु आवृश्चते**=उन 'अग्नि, सोम, काम व मित्र-वरुण' से छिन्न हो जाता है, इस वेदवाणी को छिपानेवाले के जीवन में अग्नि, सोम आदि की ठीक स्थिति नहीं होती।

भावार्थ—वेदवाणी को अपनाने का लाभ यह है कि हमारे जीवन में अग्नि, सोम आदि तत्त्वों की उचित स्थिति होती है। यह गोपति इस वेदवाणी को ब्राह्मणों के लिए न देता हुआ इन अग्नि, सोम आदि को छिन्न कर बैठता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'आचार्याय प्रियं धनमाहर, प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः'

यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम्।
चरेदस्य तावद्गोषु नास्यं श्रुत्वा गृहे वसेत्॥ २७॥

१. **यावत्**=जब तक **अस्याः**=इस वशा (वेदवाणी) के **गोपतिः**=ज्ञान की वाणियों का रक्षक आचार्य **स्वयम्**=अपने-आप **ऋचः**=ऋचाओं को **न उपशृणुयात्**=विद्यार्थी से सुन न ले **तावत्**=तब

तक **अस्य गोषु चरेत्**=इस आचार्य से दी जानेवाली ज्ञान की वाणियों में ही यह विद्यार्थी विचरण करे, अर्थात् जब तक आचार्य इस विद्यार्थी की परीक्षा न ले-ले तब तक यह विद्यार्थी ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन में ही प्रवृत्त रहे। २. परन्तु परीक्षोत्तीर्ण होने पर, अर्थात् **श्रुत्वा**=आचार्य से इन ज्ञान की वाणियों को सम्यक् सुनकर **अस्य गृहे न वसेत्**=इस आचार्य के घर में ही न रहता रहे। आचार्य से स्वीकृति पाकर संसार में आये। गृहस्थ आदि आश्रमों का सम्यक् निर्वहण करता हुआ अन्ततः संन्यस्त होकर उस वेदवाणी का सन्देश सबको सुनानेवाला बने। आचार्यकुल में ही अपने को समाप्त कर लेना भी ठीक नहीं होता। आयार्चकुल में इस वेदवाणी का श्रवण होता है, 'मनन' तो गृहस्थ में ही होना है और फिर वानप्रस्थ में इसका निदिध्यासन होकर संन्यास में वह इसका साक्षात्कार करता है और औरों के लिए इस ज्ञान को देनेवाला बनता है।

भावार्थ—जब तक आचार्य से ली जानेवाली परीक्षा में यह विद्यार्थी उत्तीर्ण नहीं होता तब तक उसे आचार्यकुल में ही रहना है। उसके बाद वहीं न रहता रहे, अपितु गृहस्थ आदि आश्रमों में आगे बढ़े।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आयुः च, भूतिं च

यो अस्या ऋचं उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः॥ २८॥

१. **यः**=जो **अस्याः**=इस वशा (वेदवाणी) की **ऋचः**=ऋचाओं को **उपश्रुत्य**=आचार्य के समीप सुनकर **अथ**=भी **गोषु अचीचरत्**=इन्द्रियों के विषय में कुटिल गतिवाला होता है—वेद पढ़कर भी विषयासक्त हो जाता है, तो **देवाः**=पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश आदि देव **हीडिताः**=क्रुद्ध हुए-हुए **तस्य**=उस विषयासक्त पुरुष के **आयुः च भूतिम् च**=आयु और ऐश्वर्य को **वृश्चन्ति**=छिन्न कर डालते हैं। २. वेद पढ़कर भी विषयासक्ति मनुष्य को 'रावण' बना देती है। यह रावण ऐश्वर्य व आयु से भ्रष्ट हो जाता है।

भावार्थ—वेदाध्ययन के बाद भी यदि एक व्यक्ति विषय-प्रवण हो जाता है, तो वह अपने आयुष्य व ऐश्वर्य को नष्ट कर बैठता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

स्थाम (शक्ति व स्थिरता)

वशा चरन्ति बहुधा देवानां निहितो निधिः।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति॥ २९॥

१. यह **वशा**=कमनीया वेदवाणी **बहुधा चरन्ती**=बहुत प्रकार से (चर गतौ, गतिः=ज्ञानम्) ज्ञान देती है। सब सत्य विद्याओं का यह प्रकाशन करती है। **देवानां निहितः निधिः**=यह वशा देवों के हृदयों में स्थापित एक कोश है। यह ज्ञान देवों के हृदयों में प्रभु द्वारा स्थापित किया गया है—यह एक अक्षय ज्ञान का कोश है। २. हे वशे! **यदा स्थाम जिघांसति**=जब यह ज्ञानपिपासु ब्राह्मण शक्ति (Strength) व स्थिरवृत्ति (Stability) को प्राप्त करना चाहता है तब तू **रूपाणि आविष्कृष्णुष्व**=इसके लिए पदार्थों के तात्त्विक स्वरूपों को प्रकट कर। तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके यह विषयासक्ति से ऊपर उठे और शक्ति व स्थिरता को प्राप्त करनेवाला बने।

भावार्थ—वेदवाणी प्रभु द्वारा देवहृदयों में स्थापित ज्ञानकोश है। यह पदार्थों का नाना प्रकार से ज्ञान देती है। तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके एक ब्राह्मण शक्ति व स्थिरता को प्राप्त करता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ज्ञान की अधिकाधिक पिपासा

आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याच्ञ्याय कृणुते मनः॥ ३०॥

१. **यदा**=जब एक ब्राह्मण (ब्रह्म—वेद-को जानने का इच्छुक पुरुष) **स्थाम जिघांसति**=शक्ति व स्थिरता को प्राप्त करने की कामना करता है, तब यह वशा (वेदवाणी) उसके लिए **आत्मानं आविः कृणुते**=अपने को प्रकट करती है। उससे तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके ही वासनात्मक जगत् से ऊपर उठकर शक्ति व स्थिरता का सम्पादन करता है। २. **अथो ह**=और अब ही **वशा**=यह वेदवाणी **ब्रह्मभ्यः याच्ञ्याय**=ज्ञानों की याचना के लिए **मनः कृणुते**=मन को करती है, अर्थात् यह वशा अपने अध्येता के मन को इस रूप में प्रेरित करती है कि वह अधिकाधिक ज्ञान का पिपासु होता जाता है।

भावार्थ—वेदवाणी का प्रकाश उसी के लिए होता है जो शक्ति व स्थिरता के सम्पादन के लिए यत्न करता है। वेदवाणी इसके मन को अधिकाधिक ज्ञान की ओर आकृष्ट करती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

शक्ति+दिव्यगुण

मनसा सं कल्पयति तद्देवाँ अपि गच्छति।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम्॥ ३१॥

१. यह वेदवाणी **मनसा**=मनन के द्वारा **संकल्पयति**=हमें सम्यक् समर्थ बनाती है (क्लृप् सामर्थ्ये)। **तत्**=तब यह **अध्येता देवान् अपिगच्छति**=दिव्यगुणों की ओर गतिवाला होता है। शक्ति के साथ ही सब सद्गुणों का वास है। Virtue वीरत्व ही तो है। इसी कारण उपनिषद् में यह कहा गया है कि '**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः**' निर्बल से आत्मतत्त्व अलभ्य है। २. **ततो ह**=उस कारण से ही, क्योंकि यह वशा हमें समर्थ बनाकर दिव्यगुण-सम्पन्न करती है, **ब्रह्मणः**=ब्राह्मणवृत्ति के लोग **वशाम्**=कमनीया वेदवाणी को **याचितुम्**=माँगने के लिए **उपप्रयन्ति**=ज्ञानियों के (गोपतियों के) समीप उपस्थित होते हैं।

भावार्थ—वेदवाणी का मनन हमें शक्तिशाली बनाकर दिव्यगुण-सम्पन्न बनाता है, इसीलिए ब्राह्मणवृत्ति के लोग इस वशा की याचना के लिए गोपति के समीप उपस्थित होते हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पितृयज्ञ, देवयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः।
दानेन राजन्यो ∫ वशाया मातुर्हेडं न गच्छति॥ ३२॥

१. एक **राजन्यः**=अपनी प्रजाओं का रञ्जन करनेवाला राजा **पितृभ्यः स्वधाकारेण**=पितरों के लिए स्वधा के द्वारा, अर्थात् पितृयज्ञ करने से, तथा **देवताभ्यः**=वायु आदि देवों की शुद्धि के लिए **यज्ञेन**=देवयज्ञ (अग्निहोत्र) के द्वारा तथा **दानेन**=सब भूतों के हित के लिए अन्न आदि के देने के द्वारा, अर्थात् भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेवयज्ञ) के द्वारा इस **मातुः**=जीवनों का निर्माण करनेवाली **वशायाः**=कमनीया वेदवाणी के **हेडं न गच्छति**=निरादर को नहीं प्राप्त होता। २. जिस राष्ट्र में 'पितृयज्ञ, देवयज्ञ व भूतयज्ञ' आदि यज्ञों का आयोजन होता रहता है, उस राष्ट्र पर इस वशा माता की कृपा बनी रहती है। वेद के अनुसार चलता हुआ वह राष्ट्र फूलता-फलता रहता है।

भावार्थ—एक राजा अपने राष्ट्र में 'पितृयज्ञ, देवयज्ञ व भूतयज्ञ' को प्रचलित करता हुआ वेदमाता का प्रिय बनता है। वेद उस राष्ट्र का सुन्दर निर्माण करता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वशा माता व राष्ट्र

वशा माता राजन्य ऽस्य तथा संभूतमग्रशः।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते॥ ३३॥

१. **वशा**=यह वेदवाणी ही **राजन्यस्य**=एक क्षत्रिय की **माता**=निर्मात्री है। जैसे एक बालक माता से पोषित होता है और माता के निर्देश में चलकर ही उन्नत होता है, उसी प्राकर एक राजा इस वेदमाता से पोषित होता है और उसे वेदमाता के निर्देश के अनुसार ही चलना चाहिए। **तथा अग्रशः संभूतम्**=वैसा ही नियम प्रारम्भ में प्रभु द्वारा बना दिया गया है। '**ब्रह्म क्षत्रमृध्नोति**'=ब्रह्म ही क्षत्र का संवर्धन करता है। २. **तस्याः**=उस वशा माता का यह **अनर्पणम् आहुः**=अत्याग कहाता है, **यत्**=जो **ब्रह्मभ्यः**=ज्ञान पिपासुओं के लिए **प्रदीयते**=इसका दान किया जाता है। 'राष्ट्र में आचार्यों द्वारा ब्रह्मचारियों के लिए सदा इस वेद का ज्ञान दिया जाता रहे', यही राष्ट्र द्वारा वेदवाणी का अत्याग होता है। ऐसा होने पर एक राष्ट्र उन्नत होता है।

भावार्थ—राष्ट्र का निर्माण वेदमाता द्वारा होता है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रभु ने यही व्यवस्था की कि राजा ब्राह्मण के निर्देशानुसार राष्ट्र-व्यवस्था करे। 'सृष्टि में आचार्य ब्रह्मचारियों के लिए वेदज्ञान देते रहें', यही राष्ट्र द्वारा वेदमाता का अत्याग है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ब्रह्मयज्ञ

यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत्स्रुचो अग्नये।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत्॥ ३४॥

१. **यथा**=जिस प्रकार **प्रगृहीतम्**=चम्मच में सम्यक् लिया हुआ **आज्यम्**=घृत **स्रुचः**=चम्मच से **अग्नये**=अग्नि के लिए **आलुम्पेत्**=छिन्न हो जाए, अर्थात् अग्नि में न डाला जाए **एवा ह**=इसप्रकार ही **ब्रह्मभ्यः**=ब्रह्मचारियों के लिए **वशाम् अददत्**=कमनीया वेदवाणी को न देता हुआ **अग्नये आवृश्चते**=अग्नि के लिए—प्रगतिदेव के लिए छिन्न हो जाता है, अर्थात् जिस राष्ट्र में विद्यार्थियों के लिए आचार्यों द्वारा वेदज्ञान उसी प्रकार नहीं दिया जाता जैसे कि कोई चम्मच से घृत को अग्नि के लिए न दे, तो वह राष्ट्र उन्नत नहीं हो पाता।

भावार्थ—'राष्ट्र में आचार्यों द्वारा विद्यार्थिरूप अग्नि में वेदज्ञानरूप घृत की आहुति पड़ती ही रहे' तभी राष्ट्र उन्नत होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**वशा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पुरोडाशवत्सा

पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति
सास्मै सर्वान्कामान्वशा प्रदुदुषे दुहे॥ ३५॥

१. 'पुरः दाशति' आगे देता है, इसी से यह 'पुरोडाश' कहलाता है। यह पुरोडाश है प्रिय जिसको, ऐसी यह **पुरोडाशवत्सा**=आगे और आगे देनेवाले को प्यार करनेवाली यह वशा (वेदवाणी) **अस्मै**=इस पुरोडाश के लिए **लोके**=इस लोक में **सुदुघा**=उत्तम ज्ञानदुग्ध का दोहन करनेवाली होती हुई **उपतिष्ठति**=उपस्थित होती है। २. उसके समीप उपस्थित होकर **सा**

वशा=वह कमनीया वेदवाणी **अस्मै प्रददुषे**=इस वेदवाणी को औरों को देनेवाले के लिए **सर्वान् कामान्**=सब इष्ट पदार्थों को **दूहे**=प्रपूरित करती है।

भावार्थ—वेदज्ञान को प्राप्त करके उस ज्ञान को ओरों को देनेवाला व्यक्ति ही वेदवाणी का प्रिय होता है। वेदवाणी अपने इस प्रिय के लिए सब इष्ट पदार्थों को प्राप्त कराती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नारकं लोकं

सर्वान्कामान्यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम्॥ ३६॥

१. यह **वशा**=कमनीया वेदवाणी **यमराज्ये**=इस नियन्ता प्रभु के राज्य में **प्रददुषे**=वेदवाणी को औरों को देनेवाले के लिए **सर्वान् कामान् दुहे**=सब इष्ट (काम्य) पदार्थों का दोहन (प्रपूरण) करती है। २. **अथ**=इसके विपरीत अब **याचिताम्**=माँगी हुई भी वेदवाणी को **निरुन्धानस्य**=रोकनेवाले के **नारकं लोकं आहुः**=नरकलोक को कहते हैं, अर्थात् इस वशा के निरोधक को नरक की प्राप्ति होती है—इसकी दुर्गति होती है।

भावार्थ—नियन्ता प्रभु के राज्य में जो वेदवाणी को औरों के लिए प्राप्त कराता है, उसकी सब इष्ट कामनाएँ पूर्ण होती हैं और माँगने पर भी न देनेवाले को नरक की प्राप्ति होती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदवाणी के निरादर का परिणाम

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम्॥ ३७॥

१. यह वशा कमनीया वेदवाणी **प्रवीयमाना**=(वी असने) परे फेंकी जाती हुई **गो-पतये** (गौ-भूमि) भूमिपति राजा के लिए **क्रुद्धा चरति**=क्रुद्ध हुई-हुई गति करती है। यदि राजा राष्ट्र में इस वेदवाणी का प्रचार नहीं करता तो वह इस वशा के कोप का भाजन होता है। २. **मा**=मुझे—वशा को **वेहतम्**=एक वन्ध्या गौ (a barren cow) **मन्यमानः**=मानता हुआ—मुझे निष्फल समझता हुआ यह राजा **मृत्योः पाशेषु**=मृत्यु के पाशों में **बध्यताम्**=बाँधा जाए।

भावार्थ—वेदवाणी का निरादर राष्ट्र की अवनति का, मृत्यु (परतन्त्रता) का कारण बनता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदवाणी का निरदार व दरिद्रता

यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम्।
अप्यस्य पुत्रान्पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः॥ ३८॥

१. **यः**=जो **वेहतम् मन्यमानः**=वेदवाणी को एक वन्ध्या गौ की भाँति मानता है, **च**=और जो इस **वशाम्**=वेदवाणी को **अमा पचते**=घर में अपने लिए पकाता है, अर्थात् इसे अर्थ-प्राप्ति का साधन बनाता है तो **बृहस्पतिः**=यह ज्ञान का स्वामी प्रभु **अस्य पुत्रान् पौत्रान् च अपि**=इसके पुत्र-पौत्रों को भी **याचयते**=भिखमंगा बना देता है।

भावार्थ—वेदवाणी को व्यर्थ समझना अथवा इसे अपने लिए अर्थ-प्राप्ति का साधन बनाना सारे कुल की दरिद्रता का हेतु बनता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

विषं दुहे

महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि।
अथो ह गोपतये वशाददुषे विषं दुहे॥ ३९॥

१. **एषा**=यह **गौः**=वेदवाणीरूपी गौ **गोषु**=ज्ञानरश्मियों में **चरन्ती अपि**=विचरती हुई भी **महत् अवतपति**=खूब ही दीप्त होती है। यह वेदज्ञान ज्ञानों में भी उत्तम ज्ञान है, यह सब ज्ञानों में देदीप्यमान होता है। २. **अथो ह**=ऐसी दीप्त होती हुई भी **वशा**=यह वेदवाणी **अददुषे गोपतये**=वेदज्ञान को औरों के लिए न देनेवाले गोपति (ज्ञानस्वामी) के लिए **विषं दुहे**=विष का दोहन करती है।

भावार्थ—वेदज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान है। यह ज्ञानों में भी ज्ञानरूप से दीप्त होता है, परन्तु जो गोपति बनकर औरों के लिए इस ज्ञान को नहीं देता, उसके लिए यह वेदवाणी विष का दोहन करती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदवाणी के प्रसार से सर्वहित-सिद्धि

प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते।
अथो वशायास्तत्प्रियं यद्देवत्रा हविः स्यात्॥ ४०॥

१. **यत्**=जब यह वेदवाणी **ब्रह्मभ्यः प्रदीयते**=ब्रह्मज्ञान के इच्छुकों के लिए दी जाती है, तब यह **प्रियं पशूनां भवति**=सब प्राणियों का प्रिय (हित) होता है, अर्थात् ज्ञान-प्रसार से सबका भला ही होता है। **अथो**=और वस्तुतः **वशायाः तत् प्रियम्**=इस वेदवाणी को भी यह बड़ा प्रिय है **यत्**=कि **देवत्रा**=देववृत्ति के व्यक्तियों में **हविः स्यात्**=(हु दाने) उसका दान हो।

भावार्थ—वेदवाणी के प्रसार से सबका हित होता है। वेदवाणी को भी यह प्रिय है कि उसे देववृत्ति के व्यक्तियों में दिया जाए।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'विलिप्ती व भीमा' वशा

या वशा उदकल्पयन्देवा यज्ञादुदेत्य।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः॥ ४१॥

१. **देवाः**=देववृत्ति के लोगों ने **यज्ञात्**=यज्ञ के द्वारा—श्रेष्ठतम कर्मों के द्वारा **उत् एत्य**=वासनामय जगत् से ऊपर उठकर **याः वशाः उदकल्पयन्**=जिन वेदवाणियों को अपने जीवन में स्थापित किया (निर्मित किया), **तासाम्**=उनमें से **नारदः**=नरसम्बन्धी 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को शुद्ध करनेवाले नारद ने **विलिप्त्यम्**=(विलिप्ती) शक्तियों का उपचय करनेवाली **भीमाम्**=शत्रुओं के लिए भयंकर वशा को **उदाकुरुत**=सबसे ऊपर किया—सबसे उच्च स्थान दिया। 'वह वेदवाणी जोकि शक्ति के उपचय व शत्रुभेदन का साधन बनती है' नारद के दृष्टिकोण में सर्वमहत्त्वपूर्ण हुई।

भावार्थ—जितना-जिना हम यज्ञों में प्रवृत्त होकर जीवन को पवित्र बना पाएँगे उतना-उतना ही अपने हृदयों को वेदवाणी के प्रकाश का आधार बनाएँगे। इन्द्रियों, मन व बुद्धि को शुद्ध बनानेवाले नारद के लिए 'विलिप्ती व भीमा' वेदवाणी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ये हमारी शक्तियों का उपचय करती हैं और वासनारूप शत्रुओं को भेदन करनेवाली होती हैं।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वशानां वशतमा (इति)

तां देवा अमीमांसन्त वशेया ३ मवशेति।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति॥ ४२॥

१. **देवाः**=देववृत्ति के लोग **ताम्**=उस वेदवाणी को **अमीमांसन्त**=सोचने लगे कि **इयं वशा अवशा इति**=यह वेदवाणी कमनीया (चाहने योग्य) है अथवा कमनीया नहीं है। यह चाहने योग्य है, अथवा चाहने योग्य नहीं है। २. इस विचार के होने पर **नारदः**=नरसम्बन्धी 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' का शोधक नारद **अब्रवीत्**=बोला कि यह तो **वशानां वशतमा इति**=कमनीय वस्तुओं में कमनीयतम है—इससे अधिक कामना के योग्य और कोई वस्तु है ही नहीं।

भावार्थ—वेदवाणी वस्तुतः सर्वाधिक कमनीय वस्तु है। यह मनुष्य का सर्वाधिक कल्याण करनेवाली है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

मनुष्यजाः वशाः कति ?

कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः॥ ४३॥

१. हे **नारद**=नरसम्बन्धी 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को शुद्ध करनेवाले विद्वन्! **कति नु वशाः**=कितनी वे वेदवाणियाँ हैं, **याः**=जिन्हें **त्वम्**=आप **मनुष्यजाः वेत्थ**=मनुष्यों में प्रादुर्भूत होनेवाली जानते हो, अर्थात् मनुष्यों में प्रभु ने कितनी ज्ञान की वाणियों को स्थापित किया है? **ताः**=उन्हें **विद्वांसं त्वा**=ज्ञानी तुझको **पृच्छामि**=पूछता हूँ। यह भी पूछता हूँ कि **अब्राह्मणः**=ज्ञान की अरुचिवाला—अब्रह्मचारी **कस्याः न अश्नीयात्**=किसका उपभोग नहीं कर पाता? यह अब्रह्मचारी किस वाणी को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता?

भावार्थ—कितनी ही ज्ञान-वाणियाँ हैं, जिनका प्रभु द्वारा मनुष्य में प्रादुर्भाव किया जाता है, अब्रह्मचारी उन ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

नारद द्वारा उत्तर

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम्॥ ४४॥

१. हे **बृहस्पते**=ज्ञानिन्! **या च वशा**=जो कमनीया वेदवाणी निश्चय से **सूतवशा**=(नियन्ता सूतः) अपना नियमन करनेवाले के वश में होती है, **तस्याः**=उस **विलिप्त्याः**=हमारा विशेष उपचय करनेवाली वेदवाणी का **अब्रह्मणः**=अब्राह्मण वृत्तिवाला, अब्रह्मचारी न **अश्नीयात्**=नहीं उपभोग कर पाता, **यः**=जो **भूत्याम्**=ऐश्वर्य में **आशंसेत**=आशंसा—इच्छा करता है, जिसका जीवनोद्देश्य रुपया-पैसा हो जाता है, वह इस वेदवाणी को प्राप्त नहीं कर पाता।

भावार्थ—वेदवाणी उसे प्राप्त नहीं होती जो ऐश्वर्य की कामनावाला हो जाता है तथा जो आत्मनियन्त्रण की शक्तिवाला नहीं होता।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

कतमा भीमतमा

नमस्ते अस्तु नारदानुष्ठु विदुषे वशा।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत्॥ ४५॥

१. हे **नारद**=नरसम्बन्धी 'इन्द्रियों, मन व बुद्धि' को शुद्ध करनेवाले साधक! **ते नमः अस्तु**=तेरे लिए नमस्कार हो। **विदुषे**=ज्ञानी के लिए **वशा**=यह वेदवाणी **अनुष्ठु**=अनुकूल स्थितिवाली होती है। २. **आसाम्**=इन वेदवाणियों में **कतमा भीमतमा**=कौन-सी अतिशयेन भयंकर है? इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि वह भयंकर है **याम्**=जिसको **अदत्वा**=न देकर **पराभवेत्**=पराभूत होता है। जिन वेदवाणियों की प्रेरणा से युवकों के जीवन का निर्माण होता है, जब उन वेदवाणियों को उनके लिए प्राप्त नहीं कराया जाता तब उनके जीवन विकृत होकर सारे परिवार के लिए दुर्गति का कारण बनते हैं। एवं, इन वेदवाणियों में जो **क-तमा**=अत्यन्त आनन्द का कारण होती है, वही न दी जाने पर **भीमतमा**=भयंकर हो जाती है।

भावार्थ—हम जीवन की शुद्धि के लिए वेदवाणी को अपनाएँ। यह हमारे जीवनों को आनन्दमय बनाती है। यह वेदवाणी जब आनेवाली सन्तानों को प्राप्त नहीं कराई जाती, तो हमारे लिए यह भयंकर हो जाती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

सूतवशा वशा

विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम्॥ ४६॥

१. हे **बृहस्पते**=ज्ञानिन्! **वशा**=जो वेदवाणी **विलिप्ती**=हमारी शक्तियों का विशेषरूप से उपचय करनेवाली है और जो **सूतवशा**=अपने जीवन का नियन्त्रण करनेवाले के वश में होती है, **तस्याः**=उस वेदवाणी का वह **अब्राह्मणः**=अब्रह्मचारी **न अश्नीयात्**=नहीं उपभोग कर पाता, **यः**=जोकि **भूत्यां आशंसेत**=ऐश्वर्य में इच्छावाला होता है। धन की ओर झुकाव हो जाने पर मनुष्य वेदवाणी को नहीं प्राप्त करता। यह वेदवाणी हमारी शक्तियों का उपचय करती है और उसी को प्राप्त होती है जोकि अपना नियन्त्रण करनेवाला बनता है।

भावार्थ—धनासक्त अब्राह्मण इस वेदवाणी को नहीं प्राप्त करता। यह शक्तियों का उपचय करनेवाली वेदवाणी नियनता को ही प्राप्त होती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

(विलिप्ती सूतवशा वशा) अनाव्रस्कः

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सो ऽनाव्रस्कः प्रजापतौ॥ ४७॥

१. **त्रीणि**=तीन **वै**=निश्चय से **वशाजातानि**=इस कमनीया वेदवाणी के प्रादुर्भाव हैं। यह 'ऋग्, यजुः, साम' रूप से प्रादुर्भूत होकर हमारे जीवनों में 'विज्ञान, कर्म व उपासना' का विकास करती है। विज्ञान के द्वारा यह **विलिप्ती**=विशेषरूप से हमारी शक्तियों का उपचय करती है। विज्ञान द्वारा प्रकृति के ठीक प्रयोग से हमारी शक्तियों का विस्तार होता है। यजुः द्वारा विविध यज्ञों का उपदेश देती हुई यह हमें निरन्तर कर्मों में प्रेरित किये रखती है। मनुष्य अपनी इन्द्रियों को निरन्तर यज्ञों में प्रवृत्त रखता हुआ 'सूत' (नियन्ता) बनता है। इन इन्द्रियों को नियन्त्रित

रख पाने से ही वस्तुतः यह वेदवाणी को प्राप्त कर पाता है। यह **सूतवशा**=नियन्ता के ही वश में होनेवाली है। अन्ततः साम द्वारा उपासना में प्रवृत्त करके यह हमें प्रभु के समीप पहुँचाती है। प्रभु के समीप पहुँचकर हम प्रभु-जैसे ही बनते हैं, अतएव यह वेदवाणी **वशा**=कमनीया—चाहने योग्य है। २. मनुष्य को चाहिए कि **ताः**=उन वेदवाणियों को स्वयं प्राप्त करके **ब्रह्मभ्यः**=ब्रह्मचारियों के लिए **प्रयच्छेत्**=देनेवाला बने। **सः**=वह वेदवाणी का औरों के लिए देनेवाला व्यक्ति **प्रजापतौ**=उस प्रजापति प्रभु में **अनाव्रस्कः**=अच्छेद्य होता है। यह प्रभु से दण्डनीय नहीं होता।

भावार्थ—वेदवाणी हमारे जीवनों में 'ज्ञान, कर्म व उपासना' का विकास करती है। मनुष्य इन वेदवाणियों को प्राप्त करके इनका ज्ञान औरों के लिए देनेवाला बने तभी यह प्रभु से दण्डनीय नहीं होता।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

ब्राह्मणों की हवि

एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाददुषो गृहे॥ ४८॥

१. **चेत्**=यदि **एनम्**=इस वेदज्ञ पुरुष से **वशां याचेयुः**=वेदवाणी की याचना करें, तो यह वेदज्ञ पुरुष उन वेदवाणी की प्राप्ति के इच्छुकों से यही कहे कि हे **ब्राह्मणाः**=ब्रह्मज्ञान के अभिलाषियो! **एतद् वः हविः**=यह तो है ही आपकी हवि—यह तो आपको देने के लिए ही (हु दाने) है। २. **याचितः**=वेदवाणी को माँगता हुआ वेदज्ञ पुरुष **इतिमन्वीत**=यही विचार करे कि यह वेदवाणी तो वह है **या**=जोकि **अददुषः गृहे**=न देनेवाले के घर में **भीमा**=भयंकर है, अर्थात् यदि मैं पात्रों में इसको प्रदान न करूँगा तो यह मेरे लिए भयंकर होगी। वेदवाणी को देना ही पुण्य है, छिपाना पाप है।

भावार्थ—वेदवाणी पात्रों में देने के लिए ही है। प्रार्थना किया हुआ भी वेदज्ञ पुरुष यदि इसे पात्रों में नहीं प्राप्त कराता तो वह अपने लिए अशुभ परिणामों को आमन्त्रित करता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

भेद

देवा वशां पर्यवदन्न नोऽदादिति हीडिताः।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराभवत्॥ ४९॥

१. **नः**=हमारे लिए इसने **न अदात्**=इस वेदवाणी को नहीं दिया **इति**=इस कारण **हीडिताः**=क्रुद्ध हुए-हुए **देवाः**=देवों ने **वशाम्**=वेदवाणी से **एताभिः ऋग्भिः**=इन ऋचाओं से इसके **भेदम्**=पार्थक्य को **पर्यवदन्**=किया। देववृत्ति के व्यक्तियों ने गोपति से वशा की याचना की। उसने याचना की उपेक्षा करके वेदवाणी को नहीं दिया। देवों को यह ठीक नहीं लगा। देवों ने वशा से ही कहा कि इस गोपति का ऋचाओं से पार्थक्य हो जाए। २. **तस्माद्**=उस कारण से **सः**=गोपति **वै**=निश्चय से **पराभवत्**=पराभूत हो गया। वस्तुतः वेदज्ञान का प्रसार आवश्यक ही है। इसका प्रसार न करनेवाला 'भेद' है—इस वाणी का विदारण करनेवाला है। इस विदारण करने से इसका स्वयं विदारण हो जाता है।

भावार्थ—हम वेदज्ञान प्राप्त करें। इस वेदज्ञान को देववृत्ति के व्यक्तियों को देनेवाले बनें। इसका अदान हमारा ही विदारण करनेवाला होगा।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

पराजय

उतैनां भेदो नाददाद्वशामिन्द्रेण याचितः।
तस्मात्तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे॥ ५०॥

१. **उत**=और **इन्द्रेण**=एक जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी (पुरुष) से **याचितः**=प्रार्थना किया गया भी यह **भेदः**=वेदवाणी का विदारण करनेवाल गोपति **एनां वशाम्**=इस वेदवाणी को **न अददात्**=नहीं देता था। इन्द्र ने भेद से वशा को देने की प्रार्थना की, परन्तु भेद ने इन्द्र के लिए इसे नहीं दिया, **तस्मात् आगसः**=उस अपराध से **देवाः**=देवों ने **अहमुत्तरे**=संग्राम में उस भेद को **अवृश्चन्**=छिन्न कर दिया। यह गोपति वेदवाणी को इन्द्र के लिए न देने के अपराध से संग्राम में पराजित हो गया।

भावार्थ—वेदवाणी को पात्रों में न प्राप्त करानेवाला जीवन-संग्राम में पराजित हो जाता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

परिरापिणः

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या॥ ५१॥

१. **ये**=जो **परिरापिणः**=व्यर्थ की बातें करनेवाले लोग **वशायाः**=वेदवाणी के **अदानाय**=न देने के लिए **वदन्ति**=व्यर्थ की युक्तियों का प्रतिपादन करते हैं। वे **जाल्माः**=असमीक्ष्यकारी लोग **अचित्त्या**=इस नासमझी से **इन्द्रस्य**=उस शत्रुविदारक प्रभु के **मन्यवे आवृश्चन्ते**=क्रोध के लिए छिन्न-भिन्न होते हैं, अर्थात् इनपर प्रभु का कोप होता है और ये विनष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—वेदवाणी का प्रसार करना ही चाहिए। उसके प्रसार को रोकने के बहाने न ढूँढने चाहिएँ। ऐसा करेंगे तो हम प्रभु के कोपभाजन होंगे।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

वेदज्ञान प्रसार पर प्रतिबन्ध

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या॥ ५२॥

१. **ये**=जो बलावलेपवाले क्षत्रिय लोग **गोपतिम्**=ज्ञान के स्वामी को **पराणीय**=प्रजावर्ग से दूर करके **अथ**=अब **आहुः**=यह कहते हैं कि **मा ददाः इति**=इन प्रजाओं के लिए इस वेदज्ञान को मत दो, **ते**=वे बलदर्पदूस राजन्य **अचित्त्या**=इस नासमझी से **रुद्रस्य**=उस दुष्टों को रुलानेवाले प्रभु के **अस्तां हेतिम्**=फेंके हुए वज्र को **परियन्ति**=सर्वतः प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—यदि एक राजा ज्ञान की वाणी के प्रसार पर प्रतिबन्ध लगाता है, तो वह प्रभु के वज्र से आहत होता है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**वशा** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

समाज से बहिष्कार

यदि हुतां यद्यहुतामुमा च पचते वशाम्।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति॥ ५३॥

१. **यदि**=यदि **हुताम्**=आचार्य के द्वारा दी गई **च**=और **यदि**=यदि **अहुताम्**=औरों के लिए

न प्राप्त करायी गई इस **वशाम्**=वेदवाणी को **अमा पचते**=अपने घर में ही परिपक्व करता है, अर्थात् इस वेदज्ञान को औरों के लिए नहीं देता, तो वह वेदज्ञान का अदाता **जिह्मः**=कुटिल व्यक्ति **सब्राह्मणान् देवान्**=ब्राह्मणोंसहित देवों को **ऋत्वा**=हिंसित करके **लोकात् निर्ऋच्छति**=समाज से निर्गत हो जाता है। समाज से यह बहिष्कृत कर दिया जाता है।

भावार्थ—आचार्य ने हमें वेदज्ञान दिया। हमें भी चाहिए कि हम इसे 'अहुता' न करके औरों के लिए देनेवाले बनें अन्यथा हम देववृत्ति के ज्ञानियों का हिंसन ही कर रहे होते हैं—वेदज्ञान को इनके लिए प्राप्त कराना ही इनका रक्षण है। यदि यह रक्षण हम नहीं करेंगे तो समाज हमारा बहिष्कार कर देगा।

इसप्रकार वेदज्ञान को न देने के दुष्परिणाम को समझकर इस ब्रह्मगवी (वेदधेनु वशा) को औरों के लिए देनेवाला यह 'अथर्वाचार्य' बनता है—स्थिरवृत्तिवाला आचार्य। यही अगले पर्याय सूक्तों का ऋषि है। इनका देवता (विषय) ब्रह्मगवी=वेदधनु है—

५ [पञ्चमं सूक्तम्, प्रथमः पर्यायः]

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**१ प्राजापत्यानुष्टुप्, २ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्**॥

सत्यं यशः श्रीः

श्रमेण॒ तप॑सा सृ॒ष्टा ब्रह्म॑णा वि॒त्तर्ते श्रि॒ता॥ १॥
स॒त्येनावृ॑ता श्रि॒या प्रावृ॑ता॒ यश॑सा॒ परी॑वृता॥ २॥

१. यह ब्रह्मगवी (वेदधनु) **श्रमेण तपसा सृष्टा**=श्रम और तप के द्वारा उत्पन्न होती है। आलसी व आरामपसन्द को यह वेदवाणी प्राप्त नहीं होती। ब्रह्मचारी को परिश्रमी व तपस्वी होना ही चाहिए। यह वेदवाणी **ब्रह्मणा वित्ता**=ज्ञान के द्वारा प्राप्त होती है—समझदार विद्यार्थी ही इसे प्राप्त कर पाता है। **ऋते श्रिता**=यह ऋत में आश्रित है—जहाँ जीवन सूर्य व चन्द्र की भाँति व्यवस्थित होता है, वहीं वेदज्ञान भी आश्रय करता है। २. यह ब्रह्मगवी **सत्येन आवृता**=सत्य से आवृत है, **श्रिया प्रावृता**=श्री से प्रावृत—खूब ही आवृत है और **यशसा परीवृता**=यश से चारों दिशाओं में आच्छादित है, अर्थात् ब्रह्मगवी को अपनानेवाला व्यक्ति सत्यवादी, श्रीसम्पन्न व यशस्वी बनता है।

भावार्थ—वेदज्ञान को प्राप्त करने के लिए 'श्रम, तप, ब्रह्म=ज्ञान=समझदारी व ऋत=व्यवस्थित जीवन' की आवश्कता है और यह वेदज्ञान हमें 'सत्य, यश व श्री' को प्राप्त कराता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्, ४ आसुर्यनुष्टुप्**॥

स्वधा...श्रद्धा...दीक्षा

स्व॒धया॒ परि॑हिता श्र॒द्धया॒ पर्यू॑ढा दी॒क्षया॑ गु॒प्ता य॒ज्ञे।
प्रति॑ष्ठिता लो॒को नि॒धन॑म्॥ ३॥
ब्रह्म॑ पदवा॒यं ब्रा॑ह्म॒णोऽधि॑पतिः॥ ४॥

१. यह ब्रह्मगवी (वेदधेनु) **स्वधया परिहिता**=(स्व-धा) आत्मधारणशक्ति से परिहित है—समन्तात् धारण की गई है अथवा 'पितृभ्यः स्वधा' पितरों का आदर करने से यह प्राप्त होती है। **श्रद्धया पर्यूढा**=श्रद्धा से यह वहन की गई है। बिना श्रद्धा के इस वेदज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। **दीक्षया गुप्ताः**=व्रतग्रहण से यह रक्षित होती है, अर्थात् व्रतधारण करनेवाला व्यक्ति ही इसको अपने में सुरक्षित कर पाता है। **यज्ञे प्रतिष्ठिता**=यह यज्ञ में प्रतिष्ठित है, अर्थात् यज्ञमय जीवनवाला व्यक्ति इस ब्रह्मगवी का आदर कर रहा होता है। **लोको निधनम्**=यह संसार इसका

घर है (Residence), अर्थात् इस वेदवाणी का प्रयोजन इस संसार-गृह को सुन्दर बनाना ही है। २. इस ब्रह्मगवी से दिया जानेवाला **ब्रह्म**=ज्ञान **पदवायम्**=(पद्यते मुनिभिर्यस्मात् तस्मात् पद उदाहृतः) उस प्रभु को प्राप्त करनेवाला है (वा गतौ) **ब्राह्मणः**=एक ब्रह्मचारी **अधिपतिः**=इस ज्ञान का अधिपति बनता है।

भावार्थ—इस वेदवाणी की प्राप्ति के लिए 'स्वधा, श्रद्धा व दीक्षा' की आवश्यकता है। यज्ञमय जीवन से इसकी प्रतिष्ठा होती है। यह संसार ही इसका घर है—यह घर को सुन्दर बनाती है। इससे दिया गया ज्ञान हमें ब्रह्म को प्राप्त कराता है। हम इसके अधिपति 'ब्राह्मण' बनें।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—५ **साम्नीपङ्क्तिः**, ६ **साम्न्युष्णिक्**॥

सत्य, बल व लक्ष्मी

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य॥ ५॥
अप क्रामति सूनृता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः॥ ६॥

१. **ताम्**=उस **ब्रह्मगवीम्**=ब्रह्मगवी को—**आददानास्य**=छीन लेनेवाले अथवा छिन्न करनेवाले (दाप् लवने) तथा **ब्राह्मणम्**=इस ब्रह्मगवी से दिये जानेवाले ज्ञान के अधिपति ब्राह्मण को **जिनतः**=सतानेवाले (ज्या वयोहानौ) **क्षत्रिस्य**=क्षत्रिय की **सूनृता**=प्रिय सत्यवाणी **अपक्रामति**=दूर भाग जाती है—इसके जीवन में इस सूनृता का स्थान नहीं रहता। **वीर्यम्**=इसका वीर्य नष्ट हो जाता है तथा **पुण्या लक्ष्मीः**=पुण्य लक्ष्मी इससे दूर चली जाती है।

भावार्थ—यदि एक क्षत्रिय इस वेदधनु का छेदन करता है और इसके स्वामी ब्राह्मण को सताता है तो वह 'सत्य, बल व पुण्य लक्ष्मी' से रहित हो जाता है।

[पञ्चमं सूक्तम्, द्वितीयः पर्यायः]

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—७ **साम्नीत्रिष्टुप्, भुरिगार्च्यनुष्टुप**, ९ **आर्च्यनुष्टुप्**, १० **उष्णिक्**, ११ **आर्चीनिचृत्पङ्क्तिः**॥

ओज व तेज आदि का विनाश

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक्चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च॥ ७॥
ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च॥ ८॥
आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च॥ ९॥
पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च॥ १०॥
तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य॥ ११॥

१. **ओजः च तेजः च**=ओज और तेज, **सहः च बलं च**=शत्रुमर्षणशक्ति और बल, **वाक् च इन्द्रियं च**=वाणी की शक्ति तथा वीर्य, **श्रीः च धर्मः च**=श्री और धर्म। इसीप्रकार **ब्रह्म च क्षत्रं च**=ज्ञान और बल, **राष्ट्रं च विशः च**=राज्य और प्रजा, **त्विषिः च यशः च**=दीप्ति व यश, **वर्चः च द्रविणं च**=रोगनिरोधक शक्ति (Vitality) और कार्यसाधक धन तथा **आयुः च रूपं च**=दीर्घजीवन व सौन्दर्य, **नाम च कीर्तिश्च**=नाम और यश, **प्राणः च अपानः च**=प्राणापानशक्ति (बल का स्थापन व दोष का निराकरण करनेवाली शक्ति), **चक्षुः च श्रोत्रं च**=दृष्टिशक्ति व श्रवणशक्ति तथा इनके साथ **पयः च रसः च**=गौ आदि का दूध और ओषधियों का रस, **अन्नं च अन्नाद्यं च**=अन्न और अन्न खाने का सामर्थ्य, **ऋतं च सत्यं च**=भौतिक क्रियाओं का ठीक समय व स्थान पर होना तथा व्यवहार में सत्यता, **इष्टं च पूर्तं च**=यज्ञ तथा 'वापी, कूप व

तड़ाग' आदि का निर्माण, **प्रजा च पशवः च**=सन्तान व गौ आदि पशु। २. **तानि सर्वाणि**=ये सब उस **क्षत्रियस्य**=क्षत्रिय के **अपक्रामन्ति**=दूर चले जाते हैं व विनष्ट हो जाते हैं जोकि **ब्रह्मगवीम् आददानस्य**=ब्रह्मगवी (वेदधनु) का छेदन करता है और **ब्राह्मणां जिनतः**=ब्राह्मण को पीड़ित करता है।

भावार्थ—ब्रह्मगवी का छेदन करनेवाला व ब्राह्मण को पीड़ित करनेवाला क्षत्रिय ओज व तेज आदि को विनष्ट कर बैठता है।

[पञ्चमं सूक्तम्, तृतीयः पर्यायः]

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**१२ विराड्विषमागायत्री १३ आसुर्यनुष्टुप्, १४ साम्न्युष्णिक्, १५ गायत्री**॥

गायत्री आवृता ब्रह्मगवी

सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा साक्षात्कृत्या कूल्बजमावृता॥ १२॥
सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः॥ १३॥
सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः॥ १४॥
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्या ∫दीयमाना मृत्योः पड्बीश आ द्यति॥ १५॥

१. **सा एषा ब्रह्मगवी**=वह यह ब्रह्मगवी—ब्राह्मण की वाणी **आवृता**=निरुद्ध हुई-हुई **भीमा**=बड़ी भयंकर है। यह **अघविषा**=राष्ट्र में पाप के विष को फैलानेवाली है। **साक्षात् कृत्या**=यह तो स्पष्ट छेदन-भेदन (हिंसा) ही है। **कूल्बजम्**=(कु+उल दाहे+ज) यह ब्रह्मगवी का निरोध भूमि पर दाह को उत्पन्न करनेवाला है। २. **अस्याम्**=इस ब्रह्मगवी के निरुद्ध होने पर **सर्वाणि घोराणि**=राष्ट्र में सब घोर कर्म होने लगते हैं **च**=और **सर्वे मृत्यवः**=सब प्रकार के रोग उठ खड़े होते हैं। **अस्याम्**=इस ब्रह्मगवी के निरुद्ध होने पर **सर्वाणि क्रूराणि**=सब क्रूर कर्म होते हैं और **सर्वे पुरुषवधाः**=सब पुरुषों के वध प्रारम्भ हो जाते हैं—क़त्ल होने लगते हैं। ३. **सा**=वह **आदीयमाना**=(दाप् लवने) छिन्न की जाती हुई **ब्रह्मगवी**=ब्राह्मण की वाणी उस **ब्रह्मज्यम्**=ज्ञान का हिंसन करनेवाले, **देवपीयुम्**=देवों के हिंसक बलदृप्त राजन्य को **मृत्योः पड्बीशे**=मौत की बेड़ी में **आद्यति**=बाँधती है (आ-दो बन्धने)।

भावार्थ—राष्ट्र में ब्राह्मण की वाणी पर प्रतिबन्ध लगाने से राष्ट्र में पाप, हिंसा व क्रूर कर्मों का प्राबल्य हो जाता है। अन्ततः यह प्रतिबन्धक राजा भी मृत्यु के पञ्जे में फँसता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**१६, १७, १९ प्राजापत्यानुष्टुप्, १८ याजुषीजगती**॥

मेनिः+हेतिः

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा॥ १६॥
तस्माद्वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता॥ १७॥
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्वीता॥ १८॥
हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवो ३ पेक्षमाणा॥ १९॥

१. **सा**=वह निरुद्ध ब्रह्मगवी **हि**=निश्चय से **शतवधा मेनिः**=सैकड़ों प्रकार से वध करनेवाला वज्र ही है। **ब्रह्मज्यस्य**=ज्ञान का हिंसन करनेवालों की **सा**=वह **हि**=निश्चय से **क्षितिः**=विनाशिका है (क्षि क्षये)। **तस्मात्**=उस कारण से यह **ब्राह्मणानां गौः**=ब्राह्मणों की वाणी **विजानता**=समझदार पुरुष से **वै**=निश्चय ही **दुराधर्षा**=सर्वथा दुर्जेय होती है—वह इसका घर्षण नहीं करता। २. यदि नासमझी के कारण इसका घर्षण हुआ तो **धावन्ती**=राष्ट्र में से भागती हुई यह ब्रह्मगवी

वज्रः=वज्र ही होती है और **उद्वीता**=(throw, cast) बाहर फेंकी गई (निर्वासित हुई-हुई) यह ब्रह्मगवी **वैश्वानरः**=अग्नि ही हो जाती है, अर्थात् यह राष्ट्र से दूर की गई ब्रह्मगवी वज्र के समान घातक व अग्नि के समान जलानेवाली होती है। पीड़ित होने पर **शफान् उत्खिदन्ती**=(Strike) अपने शफों (खुरों) को ऊपर आहत करती हुई यह **हेतिः**=हनन करनेवाला आयुध बनती है, और **अप ईक्षमाणा**=(Stand in need of) सहायता के लिए इधर-उधर देखती हुई, किसी रक्षक को चाहती हुई यह ब्रह्मगवी **महादेवः**=प्रलयंकर महादेव ही हो जाती है, अर्थात् जिस राष्ट्र में यह ब्रह्मगवी अत्याचारित होकर सहायता की अपेक्षावाली होती है, वहाँ यह प्रलय ही मचा देती है।

भावार्थ—प्रतिबन्ध को प्राप्त हुई-हुई ब्रह्मगवी राष्ट्र के विनाश का कारण बनती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**२० प्राजापत्यानुष्टुप्, २२साम्नीबृहती, २३ याजुषीत्रिष्टुप्** ॥

क्षुरपवि----शीर्षक्ति

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ २० ॥
मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ २१ ॥
सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ २२ ॥
मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ २३ ॥

१. **ईक्षमाणा**=अत्याचरित यह ब्रह्मगवी सहायता के लिए इधर-उधर झाँकती हुई **क्षुरपविः**=(The point of a spear) छुरे की नोक के समान हो जाती है। यह अत्याचारी की छाती में प्रविष्ट होकर उसे समाप्त कर देती है। **वाश्यमाना**=सहायता के लिए पुकारती हुई यह **अभिस्फूर्जति**=चारों ओर मेघगर्जना के समान शब्द पैदा कर देती है। **हिङ्कृण्वती**=बंभारती हुई यह **मृत्युः**=ब्रह्मज्य की मौत होती है। **पुच्छं पर्यस्यन्ती**=पूँछ फटकारती हुई यह ब्रह्मगवी **उग्रः देवः**=संहार करनेवाला काल (देव) ही बन जाती है। २. **कर्णौ वरीवर्जयन्ति**=(Turn away, avert) कानों को बारम्बार परे करती हुई यह ब्रह्मगवी **सर्वज्यानिः**=सब हानियों का कारण बनती है और **मेहन्ती**=मेहन (मूत्र) करती हुई **राजयक्ष्मः**=राजयक्ष्मा (क्षय) को पैदा करती है। **दुह्यमाना**=यदि यह ब्रह्मगवी दोही जाए, अर्थात् उसे भी धनार्जन का साधन बनाया जाए, तो यह **मेनिः**=वज्र ही हो जाती है और **दुग्धा**=दुग्ध हुई-हुई **शीर्षक्तिः**=सिरदर्द ही हो जाती है।

भावार्थ—ब्रह्मगवी पर किसी तरह का अत्याचार करना अनुचित है, अत्याचरित हुई-हुई यह अत्याचारी की हानि व मृत्यु का कारण बनती है। इसे अर्थप्राप्ति का साधन भी नहीं बनाना, अन्यथा यह एक सरदर्द ही हो जाती है।

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**२४ आसुरीगायत्री, २५ साम्न्यनुष्टुप्, २६ साम्न्युष्णिक्, २७ आर्च्युष्णिक्** ॥

अन्धकार व विनाश

सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ २४ ॥
शरव्या ३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ २५ ॥
अघविषा निपतन्ती तमो निपतिता ॥ २६ ॥
अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ २७ ॥

१. यदि एक ब्रह्मज्य राजन्य एक वेदज्ञ ब्राह्मण को नौकर की तरह अपने समीप उपस्थित होने के लिए आदिष्ट करता है, तो **उपतिष्ठन्ती**=उसके समीप उपस्थित होती हुई यह ब्रह्मगवी **सेदिः**=उस अत्यचारी के विनाश का कारण होती है। **परामृष्टा**=और यदि उस अत्याचारी से यह किसी प्रकार परामृष्ट होती है—कठोर स्पर्श को प्राप्त करती है, तो **मिथोयोधः**=यह राष्ट्र की इन प्रकृतियों को परस्पर लड़ानेवाली हो जाती है, अर्थात् ये शासक आपस में ही लड़ मरते हैं। इस ब्रह्मघ्न द्वारा **मुखे अपिनह्यमाने**=मुख के बाँधे जाने पर, अर्थात् प्रचार पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने पर **शरव्या**=यह लक्ष्य पर आघात करनेवाले बाणसमूह के समान हो जाती है। **हन्यमाना**=मारी जाती हुई यह ब्रह्मगवी **ऋतिः**=विनाश ही हो जाती है। **निपतन्ती**=नीचे गिरती हुई यह **अघविषा**=भयंकर विष हो जाती है और **निपतिता तमः**=गिरी हुई चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार फैला देती है। संक्षेप में, इसप्रकार पीड़ित हुई-हुई यह **ब्रह्मगवी**=वेदवाणी **ब्रह्मज्यस्य**=ब्रह्म की हानि करनेवाले इस ब्रह्मघाती के **अनुगच्छन्ती**=पीछे चलती हुई **प्राणान् उपदासयति**=उसके प्राणों को विनष्ट कर डालती है।

भावार्थ—ब्रह्मज्य शासक ज्ञानप्रसार का विरोध करता हुआ राष्ट्र को अन्धकार के गर्त में डाल देता है और स्वयं भी उस अन्धकार में ही कहीं विलीन हो जाता है।

[पञ्चमं सूक्तम्, चतुर्थः पर्यायः]

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**२८ आसुरीगायत्री, २९ आसुर्यनुष्टुप्; ३० साम्न्यनुष्टुप्; ३१ याजुषीत्रिष्टुप्**॥

वैर.....असमृद्धि.....पाप.....पारुष्य

वैरं॑ विकृत्यमा॑ना॒ पौत्रा॑द्यं विभा॒ज्यमा॑ना॥ २८॥
दे॒व॒हेतिर्हि॒यमा॑णा॒ व्यृ ⌠द्धिर्हृ॒ता॥ २९॥
पा॒प्माधि॑धी॒यमा॑ना॒ पारु॑ष्यमवधी॒यमा॑ना॥ ३०॥
वि॒षं प्र॒यस्य॑न्ती त॒क्मा प्र॑य॒स्ता॥ ३१॥

१. 'एक बलदृप्त राजन्य इस ब्रह्मगवी का हनन करता है, और परिणामतः राष्ट्र में किस प्रकार का विनाश उपस्थित होता है' इसका यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार में वर्णन किया गया है। कहते हैं कि यह ब्रह्मगवी **विकृत्यमाना**=विविध प्रकार से छिन्न की जाती हुई। अपने विद्वेषियों के लिए **वैरम्**=वैर को उत्पन्न करती है, ये ब्रह्मगवी का विकृन्तन करनेवाले परस्पर वैर-विरोध में लड़ मरते हैं। **विभाज्यमाना**=अंग-अंग काटकर आपस में बाँटी जाती हुई ब्रह्मगवी **पौत्राद्यम्**=पुत्र-पौत्र आदि को खा जानेवाली होती है। **ह्रियमाना**=हरण की जाती हुई यह **देवहेतिः**=इन्द्रियों (इन्द्रियशक्तियों) की विनाशक होती है, और **हृता**=हरण की गई होने पर **व्यृद्धिः**=सब प्रकार की असमृद्धि का कारण बनती है। २. **अधिधीयमाना**=इस ब्रह्मज्य द्वारा अधिकार में रक्खी हुई—पूर्णरूप से प्रतिबद्ध-सी हुई-हुई **पाप्मा**=पाप के प्रसार का हेतु बनती है, **अवधीयमाना**=तिरस्कृत करके दूर की जाती हुई **पारुष्यम्**=क्रूरताओं को उत्पन्न करती है, अर्थात् इस स्थिति में राजा प्रजा पर अत्याचार करने लगता है। **प्रयस्यन्ती विषम्**=ब्रह्मज्य द्वारा कष्ट उठाती हुई विष के समान प्राणनाशक बनती है, **प्रयस्ता**=सताई हुई होने पर यह **तक्मा**=ज्वर ही हो जाती है।

भावार्थ—ब्रह्मगवी का छेदन व तिरस्कार राष्ट्र में 'वैर, अकालमृत्यु, इन्द्रियशक्ति-विनाश, असमृद्धि, पाप व पारुष्य' का कारण बनता है और विष बनकर ज्वरित करनेवाला होता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**३२ साम्नीगायत्र्यासुरीगायत्री; ३३, ३४ साम्नीबृहती; ३५ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्**॥

अघ, अभूति, पराभूति

अघं पच्यमाना दुःष्वप्न्यं पक्वा॥ ३२॥
मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा क्षितिः पर्याकृता॥ ३३॥
असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता॥ ३४॥
अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता॥ ३५॥

१. यह ब्रह्मगवी **पच्यमाना**=हाँडी आदि में पकाई जाती हुई **अघम्**=पाप व दुःख का कारण होती है और **पक्वा**=पकाई होने पर **दुःष्वप्न्यम्**=अशुभ स्वप्नों का कारण बनती है। **पर्याक्रियमाणा**=कड़छी से हिलाई-डुलाई जाती हुई **मूल बर्हणी**=मूल का ही नाश करनेवाली होती है और **पर्याकृता**=कड़छी से लोटी-पोटी गई यह ब्रह्मगवी **क्षितिः**=विनाश-ही-विनाश हो जाती है। २. **गन्धेन**=(गन्धनम् हिंसनम्) हिंसन से व पकाये जाने के समय उठते हुए गन्ध से यह **असंज्ञा**=अचेतनता को पैदा करती है। **उद्ध्रियमाणा**=कड़छी से ऊपर निकाली जाती हुई यह **शुक्**=शोकरूप होती है, **उद्धृता**=ऊपर निकाली गई होने पर **आशीविषः**=सर्प ही हो जाती है—सर्प के समान प्राणहर होती है। **उपह्रियमाणा**=पकाई जाकर परोसी जाती हुई यह **अभूतिः**=अनैश्वर्य होती है। **उपहृता**=परोसी हुई होकर **पराभूतिः**=यह पराभव का कारण बनती है।

भावार्थ—पीड़ित की गई तथा भोग का साधन बनाई गई ब्रह्मगवी 'पाप, अशुभस्वप्न, मूलोच्छेद, विनाश, अचेतनता, शोक, अनैश्वर्य व पराभव' का कारण बनती है—सर्प के समान विनाशक हो जाती है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**३६ साम्न्युष्णिक्; ३७ आसुर्यनुष्टुप्; ३८ प्रतिष्ठागायत्री**॥

अभ्युदय व निःश्रेयस का विनाश

शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता॥ ३६॥
अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता॥ ३७॥
अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च॥ ३८॥

१. **पिश्यमाना**=टुकड़े-टुकड़े की जाती हुई यह ब्रह्मगवी **क्रुद्धः शर्वः**=क्रुद्ध हुए-हुए प्रलंकार रुद्र के समान होती है। **पिशिता**=काटी गई होने पर **शिमिदा**=शान्ति व सुख को नष्ट करनेवाली होती है (दाप् लवने)। **अश्यमाना**=खाई जाती हुई **अवर्तिः**=दरिद्रता व सत्ताविनाश का हेतु होती है और **अशिता निर्ऋतिः**=खायी गई होकर पापदेवता व मृत्यु के समान भयंकर होती है। २. **अशिता ब्रह्मगवी**=खायी गई यह 'ब्रह्मगवी' **ब्रह्मज्यम्**=ज्ञान के विनाशक इस राजन्य को **अस्मात् च अमुष्मात् च**=इस लोक से और परलोक से—अभ्युदय व निःश्रेयस से—**छिनत्ति**=उखाड़ फेंकती है।

भावार्थ—वेदवाणी का प्रतिरोध प्रलयंकर होता है—यह शान्ति का विनाश कर देता है, दरिद्रता व दुर्गति का कारण बनता है तथा अभ्युदय व निःश्रेयस को विनष्ट कर देता है।

[पञ्चमं सूक्तम्, पञ्चमः पर्यायः]

ऋषिः—**कश्यपः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**३९ साम्नीपङ्क्तिः; ४० याजुष्यनुष्टुप्; ४१ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्; ४२ आसुरीबृहती** ॥

सर्वविनाश

तस्या आहननं कृत्या मेनिराशसनं वलग ऊबध्यम् ॥ ३९ ॥
अस्वगता परिहुता ॥ ४० ॥
अग्निः क्रव्याद्भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥ ४१ ॥
सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥ ४२ ॥

१. **तस्याः**=उस ब्रह्मगवी का **आहननम्**=मारना **कृत्या**=अपनी हिंसा करना है, **आशसनम्**=उसका टुकड़े करना **मेनिः**=वज्राघात के समान है, **ऊबध्यम्**=(दुर् बन्धनम्) उसको बुरी तरह से बाँधना **वलगः**=(वल+ग) हलचल की ओर ले-जानेवाला है—प्रजा में विप्लव को पैदा करनेवाला है। २. **परिहुता**=(हु अपनयने) अपनीता व चुरा ली गई यह ब्रह्मगवी **अस्व-गता**=निर्धनता की ओर गमनवाली होती है—यह निर्धनता को उत्पन्न कर देती है। उस समय यह ब्रह्मगवी **क्रव्यात् अग्निः भूत्वा**=कच्चा मांस खा-जानेवाली अग्नि बनकर **ब्रह्मज्यं प्रविश्य अत्ति**=ब्रह्म की हानि करनेवाले में प्रवेश करके उसे खा जाती है। **अस्य**=इसके **सर्वा अङ्गा**=सब अङ्गों को **पर्वा**=पर्वों को—जोड़ों को व **मूलानि**=मूलों को **वृश्चति**=छिन्न कर देती है।

भावार्थ—विनष्ट की गई ब्रह्मगवी विनाश का ही कारण बनती है।

ऋषिः=**कश्यपः** ॥ देवता—**ब्रह्मगवी** ॥ छन्दः—**४३ साम्नीबृहती; ४४ पिपीलिकामध्यानुष्टुप्; ४५ आर्चीबृहती; ४६ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्** ॥

वंशविनाश

छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ४३ ॥
विवाहां ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी
ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ४४ ॥
अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥ ४५ ॥
य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ४६ ॥

१. पीड़ित की गई ब्रह्मगवी **अस्य पितृबन्धु छिनत्ति**=पैतृक सम्बन्धों को छिन्न कर डालती है, **मातृबन्धु पराभावयति**=मातृपक्षवालों को भी पराभूत करती है। यह **ब्रह्मगवी**=वेदवाणी यदि **क्षत्रियेण**=क्षत्रिय से **अपुनः दीयमाना**=फिर वापस लौटाई न जाए तो यह **ब्रह्मज्यस्य**=ब्रह्मघाती के **विवाहान्**=विवाहों को व **सर्वान् ज्ञातीन् अपि**=सब रिश्तेदारों को भी **क्षापयति**=नष्ट कर देती है। २. **यः**=जो **क्षत्रियः**=क्षत्रिय **एवं विदुषः ब्राह्मणस्य**=इसप्रकार ज्ञानी ब्राह्मण की **गाम् आदत्ते**=इस ब्रह्मगवी को छीन लेता है, वह **अपरापरणः भवति**=सहायक से रहित हो जाता है अथवा पुराणों व नयों से रहित हो जाता है—सब इसका साथ छोड़ जाते हैं और **क्षीयते**=यह नष्ट हो जाता है। यह छिन्ना ब्रह्मगवी **एनम्**=इसको **अवास्तुम्**=घर-बार से रहित, **अस्वगम्**=(अ स्व ग) निर्धन व **अप्रजसम्**=सन्तानरहित **करोति**=कर देती है।

भावार्थ—छिन्ना ब्रह्मगवी ब्रह्मज्य के सब वंश को ही समाप्त कर देती है।

[पञ्चमं सूक्तम्, षष्ठः पर्यायः]

ऋषिः=कश्यपः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—४७, ४९ प्राजापत्यानुष्टुप्; ४८ आर्च्यनुष्टुप्; ५० साम्नीबृहती ॥

ब्रह्मज्य की अन्त्येष्टि

क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४७ ॥
क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यन्ति केशनीराघ्नानाः
पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ॥ ४८ ॥
क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ४९ ॥
क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत्तदासीं ३ दिदं नु ता ३ दिति ॥ ५० ॥

१. **क्षिप्रम्**=शीघ्र ही **वै**=निश्चय से **तस्य**=उस ब्रह्मज्य के **आहनने**=मारे जाने पर **गृधाः**=गिद्ध **ऐलबम्**=(Noise, cry) कोलाहल **कुर्वते**=करते हैं। **क्षिप्रं वै**=शीघ्र ही निश्चय से **तस्य आदहनं परि**=उस ब्रह्मज्य के भस्मीकरण स्थान के चारों ओर **केशिनीः**=खुले बालोंवाली, **पाणिना उरसि आघ्नानाः**=हाथ से छाती पर आघात करती हुई, **पापं ऐलबम् कुर्वाणाः**=अशुभ शब्द 'क्रन्दन-ध्वनि' करती हुई स्त्रियाँ **नृत्यन्ति**=नाचती हैं। २. **क्षिप्रं वै**=शीघ्र ही निश्चय से **तस्य**=उसके **वास्तुषु**=घरों में **वृकाः ऐलबम् कुर्वते**=भेड़िये शोर करने लगते हैं, अर्थात् उसका घर उजड़कर भेड़ियों का निवासस्थान बन जाता है। **क्षिप्रं वै**=शीघ्र ही निश्चय से **तस्य पृच्छन्ति**=उसके विषय में पूछते हैं **यत्**=कि **तत् आसीत्**=ओह! इसका तो वह अवर्णनीय वैभव था **इदं नु तत् इति**=क्या यह वही है—बस, वह सब यही खण्डहर होकर ढेर हुआ पड़ा है।

भावार्थ—ब्रह्मज्य का विनाश हो जाता है। उसका घर उजड़ जाता है—सब ऐश्वर्य समाप्त हो जाता है।

ऋषिः—कश्यपः ॥ देवता—ब्रह्मगवी ॥ छन्दः—५१-५३ प्राजापत्यानुष्टुप्; ५४, ५५ प्राजापत्योष्णिक्; ५६ आसुरीगायत्री ॥

छेदन.....हिंसा.....आशरविनाश

छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ५१ ॥
आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ५२ ॥
वैश्वदेवी ह्युच्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ५३ ॥
ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ५४ ॥
क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ५५ ॥
आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ५६ ॥

१. हे **आंगिरसि**=विद्वान् ब्राह्मण की शक्तिरूप वेदवाणि! तू **ब्रह्मज्यम्**=ज्ञान के ध्वंसक दुष्ट पुरुष को **छिन्धि**=काट डाल, **आच्छिन्धि**=सब ओर से काट डाल, **प्रच्छिन्धि**=अच्छी प्रकार काट डाल। **क्षापय क्षापय**=उजाड़ डाल और उजाड़ ही डाल। २. हे आंगिरसि! तू **हि**=निश्चय से **वैश्वदेवी उच्यसे**=सब दिव्य गुणोंवाली व सब शत्रुओं की विजिगीषावाली (दिव् विजिगीषायाम्) कही जाती है। **आवृता**=आवृत कर दी गई—प्रतिबन्ध लगा दी गई तू **कृत्या**=हिंसा हो जाती है, **कूल्वजम्**=(कु+उल दाहे+ज) इस पृथिवी पर दाह को उत्पन्न करनेवाली होती है। तू **ओषन्ती**=जलाती हुई, और **सम् ओषन्ती**=खूब ही जलाती हुई **ब्रह्मणो वज्रः**=इस ब्रह्मज्य के

लिए ब्रह्म (परमात्मा) का वज्र ही हो जाती है। ३. **क्षुरपविः**=छुरे की नोक बनकर **मृत्युः भूत्वा विधाव त्वम्**=मौत बनकर तू ब्रह्मज्य पर आक्रमण कर। इन **जिनताम्**=ब्रह्मज्यों के **वर्चः**=तेज को **इष्टम्**=यज्ञों को **पूर्तम्**=वापी, कूप, तड़ागादि के निर्माण से उत्पन्न फलों को **आशिषः च**=और उन ब्रह्मज्यों की सब कामनाओं को तू **आदत्से**=छीन लेती है—विनष्ट कर डालती है।

भावार्थ—नष्ट की गई ब्रह्मगवी इन ब्रह्मज्यों को ही छिन्न कर डालती है। वैश्वदेवी होती हुई भी यह ब्रह्मज्यों के लिए हिंसा प्रमाणित होती है। यह उनके सब पुण्यफलों को छीन लेती है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—५७-५९, ६० **गायत्री; ६१ प्राजापत्यानुष्टुप्**॥

अघात् अघविषा

आदायं जीतं जीतायं लोके ३ऽमुष्मिन्प्र यच्छसि॥ ५७॥
अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या॥ ५८॥
मेनिः शरव्या ∫ भवाघाद्घविषा भव॥ ५९॥
अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः॥ ६०॥
त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम्॥ ६१॥

१. हे ब्रह्मगवि! तू **जीतम्**=हिंसाकारी पुरुष को **आदाय**=पकड़कर **अमुष्मिन् लोके**=परलोक में **जीताय प्रयच्छसि**=उससे पीड़ित पुरुष के हाथों में सौंप देती है। यह ब्रह्मज्य अगले जीवन में उस ब्राह्मण की अधीनता में होता है। हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये वेदवाणि! तू **ब्राह्मणस्य**=इस ज्ञानी ब्राह्मण की **अभिशस्त्या**=हिंसा से उत्पन्न होनेवाले भयंकर परिणामों को उपस्थित करके **पदवीः भव**=मार्गदर्शक बन। तू ब्रह्मज्य के लिए **मेनिः**=वज्र **भव**=हो, **शरव्या**=लक्ष्य पर आघात करनेवाले शरसमूह के समान हो, **आघात् अघविषा भव**=कष्ट से भी घोर कष्टरूप विषवाली बन। २. हे **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये वेदवाणि! तू इस **ब्रह्मज्यस्य**=ज्ञान के विघातक, **कृतागसः**=(कृतं आगो येन) अपराधकारी, **देवपीयोः**=विद्वानों व दिव्यगुणों के हिंसक, **अराधसः**=उत्तम कार्यों को न सिद्ध होने देनेवाले दुष्ट के **शिरः प्रजहि**=सिर को कुचल डाल। **त्वया**=तेरे द्वारा **प्रमूर्णम्**=मारे गये, **मृदितम्**=चकनाचूर किये गये, **दुश्चितम्**=दुष्टबुद्धि पुरुष को **अग्निः दहतु**=अग्नि दग्ध कर दे।

भावार्थ—ब्रह्मगवी का हिंसक पुरुष जन्मान्तर में ब्राह्मणों के वश में स्थापित होता है। हिंसित ब्रह्मगवी ब्रह्मज्य का हिंसन करती है। हिंसित ब्रह्मगवी से यह ब्रह्मज्य अग्नि द्वारा दग्ध किया जाता है।

[पञ्चमं सूक्तम्, सप्तमः पर्यायः]

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—६२-६४, ६५ **गायत्री; ६६ प्राजापत्यानुष्टुप्; ६७ प्राजापत्यागायत्री**॥

व्रश्चन.....प्रव्रश्चन.....संव्रश्चन

वृश्च प्र वृश्च दह प्र दह सं दह॥ ६२॥
ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसन्दह॥ ६३॥
यथायाद्यमसादनात्पापलोकान्परावतः॥ ६४॥
एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः॥ ६५॥

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना॥ ६६॥

प्र स्कन्धान्प्र शिरो जहि॥ ६७॥

१. हे **देवि**=शत्रुओं को पराजित करनेवाली **अघ्न्ये**=अहन्तव्ये वेदवाणि! तू **ब्रह्मज्यम्**=इस ब्राह्मणों के हिंसक को—ज्ञान-विनाशक को **वृश्च**=काट डाल, **प्रवृश्च**=खूब ही काट डाल, **संवृश्च**=सम्यक् काट डाल। **दह**=इसे जला दे, **प्रदह**=प्रकर्षेण दग्ध कर दे और **संदह**=सम्यक् दग्ध कर दे। **आमूलात् अनुसंदह**=जड़ तक जला डाल। २. यथा जिससे यह **ब्रह्मज्य यमसादनात्**=(अयं वै यमः याऽयं पवते) इस वायुलोक से **परावतः**=सुदूर **पापलोकान्**=पापियों को प्राप्त होनेवाले घोर लोकों को **अयात्**=जाए। मरकर यह ब्रह्मज्य वायु में विचरता हुआ पापियों को प्राप्त होनेवाले लोकों को (असुर्य लोकों को जोकि घोर अन्धकार से आवृत हैं) प्राप्त होता है। २. **एवा**=इसप्रकार हे **देवि अघ्न्ये**=दिव्यगुणसम्पन्न अहन्तव्ये वेदवाणि! **त्वम्**=तू इस **ब्रह्मज्यस्य**=ब्रह्मघात करनेवाले दुष्ट के **स्कन्धान्**=कन्धों को **शतपर्वणा वज्रेण**=सौ पर्वोंवाले—नोकों, दन्दानोंवाले वज्र से **प्रजहि**=नष्ट कर डाल। **तीक्ष्णेन**=बड़े तीक्ष्ण **क्षुरभृष्टना**=(भृष्टि Frying) भून डालनेवाले छुरे से **शिरः प्र**=(जहि) सिर को काट डाल।

भावार्थ—ब्रह्मज्य का इस हिंसित वेदवाणी द्वारा ही ब्रश्चन व दहन कर दिया जाता है।

ऋषिः—**कश्यपः**॥ देवता—**ब्रह्मगवी**॥ छन्दः—**६८-७० प्राजापत्यानुष्टुप्; ७१ आसुरिपङ्क्तिः; ७२ प्राजापत्यात्रिष्टुप्; ७३ आसुर्युष्णिक्**॥

ब्रह्मज्य का संहार व निर्वासन

लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय॥ ६८॥

मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह॥ ६९॥

अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि॥ ७०॥

सर्वास्यङ्गा पर्वाणि वि श्रथय॥ ७१॥

अग्निरेनं क्रव्यात्पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः॥ ७२॥

सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्यो ष्तु॥ ७३॥

१. **अस्य**=इस ब्रह्मघाती (वेदविरोधी) के **लोमानि संछिन्धि**=लोमों को काट डाल। **अस्य त्वचं विवेष्टय**=इस की त्वचा (खाल) को उतार लो। **अस्य मांसानि शातय**=इसके मांस के लोथड़ों को काट डाल। **अस्य स्नावानि संवृह**=इसकी नसों को ऐंठ दे—कुचल दे। **अस्य अस्थीनि पीडय**=इसकी हड्डियों को मसल डाल। **अस्य मज्जानम् निर्जहि**=इसकी मज्जा को नष्ट कर डाल। **अस्य**=इसके **सर्वा अङ्गा पर्वाणि**=सब अङ्गों व जोड़ों को **विश्रथय**=ढीला कर दे-बिल्कुल पृथक्-पृथक् कर डाल। २. **क्रव्यात् अग्निः**=कच्चे मांस को खा-जानेवाला अग्नि **एनम्**=इस ब्रह्मज्य को **पृथिव्याः नुदताम्**=पृथिवी से धकेल दे और **उत् ओषतु**=जला डाले। **वायुः**=वायुदेव **महतः वरिम्णः**=महान् विस्तारवाले **अन्तरिक्षात्**=अन्तरिक्ष से पृथक् कर दे और **सूर्यः**=सूर्य **एनम्**=इसको **दिवः**=द्युलोक से **प्रणुदताम्**=परे धकेल दे और **नि ओषतु**=नितरां व निश्चय से दग्ध कर दे। इस ब्रह्मघाती को अग्नि आदि देव अपने लोकों से पृथक् कर दें।

भावार्थ—ब्रह्मघाती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का छेदन हो जाता है और इसका त्रिलोकी से निर्वासन कर दिया जाता है।

॥इति द्वादशं काण्डम्॥